रवीन्द्र-साहित्य

पहला भाग

'दो बहन'

उपन्यास

सौगात

पाठकी बात

कंकाल

स्वर्णमृग

बदलीका दिन

कहानियाँ

हिन्दू-मुसलमान

निबन्ध

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें
महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है
आशा है
सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे

मूल्य दो रुपया
जिल्दका ।) ज्यादा

रवीन्द्र-साहित्य

पहला भाग

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

सूची

प्रकाशक :—धन्यकुमार जैन, 'हिन्दी-ग्रन्थागार'
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता

मुद्रक, हजारीलाल शर्मा, हिन्द प्रेस एण्ड पब्लिकेशन
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता

'दो बहन' के विषयमें

रवीन्द्रनाथने, "दो बहन" उपन्यासके सम्बन्धमें लिखे-गये एक पत्रके उत्तरमें, लिखा है :—तुम लिखते हो कि तुम्हारी बान्धवी मेरी कल्पित 'दो बहनों' के भाग्य-विपर्ययका सारा दोष शशांकपर मढ़ रही हैं। उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि दोष असलमें प्रकृति-मायाविनीका है। आदमीके चलनेके रास्तेमें वह निर्दय-निष्ठुर 'धोखेकी टट्टी' बिछा रखती है; राहगीर बेचारा बेधड़क चलते-चलते अचानक ऐसी जगह कदम रखता है जहाँ ढका-हुआ गड्ढा होता है। शशांककी गार्हस्थिक जीवन-यात्राका रास्ता देखनेमें मजबूत था, पर शशांकके चलनेके लिए उसमें थी फिसलन। उस अभागेको, गड्ढेमें पड़कर हाड़-गोड़ टूटनेके पहले क्षण तक, यह नहीं पता था कि उसका अगला कदम उसे कहाँ ले जायगा। दिन अच्छी तरह बीत रहे थे, लेकिन जिस पुलसे वह पार हो रहा था उसकी बनावटमें थी पोल; क्योंकि शशांक और शर्मिलाका भीतरसे जोड़ नहीं मिला था, और साथ ही ऊपरसे किसीको उसका पता भी नहीं चला। अचानक बाहरसे टूटनेकी आवाज सुनाई देनेके पहले क्या इस बातका उनमेंसे किसीको कुछ पता था? जब मालूम हुआ, तब तो तकदीर फूट चुकी थी। सलाह देनेवाले कहेंगे कि तकदीरपर बैण्डेज बाँधकर भले-आदमियोंकी तरह लंगड़ाते-लड़खड़ाते और ठोकर खाते हुए उसी पुराने रास्तेपर ही चलना चाहिए था लाठीके सहारे। शशांक इसी तरह चलता। पर शर्मिला कह बैठी, वैसे चलनेमें दोनोंमेंसे किसीको भी आराम नहीं। हिमाकतके साथ उसने अपने खास प्लैनके माफिक तकदीरकी गलती सुधारनेका प्रस्ताव पेश किया। मगर भाग्यके लेखपर कलम चलाना इतना आसान नहीं। इस बातको समझा था ऊर्मीने। भू-कम्पके कम्पन-केन्द्रस्थलपर कच्चे मसालेसे बने डगमगाते हुए घरमें रहना उसे पसन्द न था। इसीसे, वह भाग खड़ी हुई। उसके बाद क्या हुआ, सो कौन कह सकता है? कालान्तरमें, कटनेका ऊपरी दाग शायद मिट गया होगा, पर कभी-कभी धक्का लगने या हिलने-डुलनेपर क्या भीतरकी कटी हुई स्नायुमें दर्द आज भी टीस नहीं मारने लगता? दर्द

जिनके होता है, उन्हींपर, हम जज बनकर फैसला देना चाहते हैं ; पर उस दर्दके लिए क्या हमेशा वे खुद ही जिम्मेदार होते हैं ? बिजली टूट पड़ी, आदमी मर गया ; तुमने कह दिया कि पहले जनमके पापका फल है। इससे सिर्फ दोष देनेकी अन्धी इच्छाका ही सबूत मिलता है, दोषका प्रमाण नहीं मिलता।

तुमने लिखा है कि बान्धवी तुम्हारी मेरी इस कहानीके सभी पात्रोंके खिलाफ हैं। तीन ही तो प्राणी हैं उसमें ; फिर भी उनमेंसे कोई भी एक उनके मन-माफिक नहीं हुआ। इस बारेमें दुःखित होनेकी कोई वजह नहीं। क्योंकि अभिव्यक्ति-तत्त्वकी प्राकृतिक निर्वाचन-पद्धति साहित्य और समाजमें एकसी नहीं है। ऐसे दृष्टान्तोंकी जहाँ-तहाँ भरमार मिलेगी कि समाजमें जिन्हें हम इष्ट-मित्रोंके खानेमें शुमार नहीं करते, साहित्यमें उनका काफी आदर करते हैं। आदर्श मानव-चरित्रके पैमानेसे नाप-जोखकर साहित्यकी श्रेष्ठताका फैसला देनेका चलन शायद इस देशके सिवा संसारमें और किसी भी देशके समालोचकोंमें नहीं देखा जाता।

साहित्य कोई श्रेयस्तत्त्वके विशुद्ध साँचेमें खिलौना ढालनेवाला कारखाना नहीं, क्या यह बात भी समझानी पड़ेगी ? 'मैकबेथ' नाटकमें दो ही प्रधान पात्र हैं, मैकबेथ और लेडी मैकबेथ। कहनेकी जरूरत नहीं कि दोनोंमेंसे किसीको भी सुकुमारमति पाठकोंके चरित्र-गठनके लिए दृष्टान्तके तौरपर नहीं पेश किया जा सकता। 'एण्टॉनी एण्ड क्रियोपेट्रा' शेक्सपीयरके प्रधान नाटकोंमेंसे अन्यतम है ; लेकिन, क्रियोपेट्रा प्रातःस्मरणीया पंच-कन्याओंमें स्थान पानेकी अधिकारिणी होनेपर भी उसे साध्वीका आदर्श नहीं कहा जा सकता ; और एण्टॉनी अपने चरित्रके अनिन्द्य आदर्शमें आधुनिक उच्चश्रेणीके बंगला उपन्यासोंके नायकोंके बराबरके दरजेका नहीं, यह बात माननी ही पड़ेगी। साथ ही, यह भी बगैर माने काम न चलेगा कि शेक्सपीयरका नाटक ऊँचे दरजेके बंगला उपन्याससे कमसे कम किसी-भी अंशमें कम नहीं। 'महाभारत' धृतराष्ट्रको तुच्छ नहीं कर सका ; मगर महत्त्वमें उनके कमी थी। थी किसके नहीं ? स्वयंवर-सभामें भीष्म ही क्या क्षमाके योग्य हैं ? और तो क्या, कविके प्रियपात्र पाण्डवोंके आचरणमें कलंक ढूंढ़ निकालनेके

लिए ज्यादा तीक्ष्णदृष्टिकी जरूरत नहीं पड़ती। आज हमारे यहाँ वेदव्यास नहीं पैदा हुए, यह उनके पुण्यका फल है।

दूसरे पक्षकी तरफसे तर्क उठाया जा सकता है कि साहित्यमें समाजधर्म और शाश्वतधर्मकी त्रुटि दिखाई देती है उसकी अपनी ही शोकपूर्ण परिणतिका प्रमाण देनेके लिए। इसका मतलब यह दिखाना है कि स्खलनका मार्ग सुखका मार्ग नहीं। लेकिन देखा जाता है कि आजकल इससे भी भले-आदमियोंका क्षोभ शान्त नहीं होता। 'घर और बाहर' उपन्यासमें सन्दीप या विमलाने गौरवजनक सिद्धि प्राप्त नहीं की, लेकिन फिर भी लेखकको उस दिन समालोचकोंके दरबारमें दण्ड पानेसे छुटकारा नहीं मिला। एकसाथ सब गला फाड़-फाड़के फरमाइश करने लगे कि 'जैसे भी हो, श्रेष्ठ आदर्शकी रक्षा करनी ही पड़ेगी।' बच्चोंका दुलार इसीको कहते हैं, जिनकी जीभ हमेशा चीनीके खिलौने चाटा चाहती है।

'दो बहन' के बारेमें तुम मेरी अपनी व्याख्या कुछ सुनना चाहते हो? मैंने तो उसका कहानीकी भूमिकामें ही फरदा-फाश कर दिया है। साधारणतः स्त्रियाँ मरदोंके बारेमें कोई 'मा' होती है, कोई 'प्रिया'; और कोई दोनोंका सम्मिश्रण। हमारे देशमें ऐसे अनेक पुरुष हैं, जो बुढ़ापे तक 'मा' की ही गोदकी आब-हवामें सुरक्षित रहते हैं। वे स्त्रीके पाससे 'मा' का लालन ही ज्यादा पाते और उसीको उपभोग्य समझते हैं। दूल्हा ब्याह करनेके लिए जब घरसे रवाना होता है तब 'मा' से कहता है, 'मा, तुम्हारे लिए दासी लाने जा रहा हूं।' यानी स्त्री आती है 'मा' का परिशिष्ट बनकर, Alma Mater की पोष्टग्रैजुएट छात्राके समान। लड़का अपने जीवनके आरम्भसे ही 'मा' से जो-जो सेवाएँ पाता आया है, उस आदतके माफिक, बहू आकर उसीको दुहराती रहती है। बहुत कम स्त्रियोंको ही ऐसा मौका मिलता है जो अपनी स्वतंत्र रीतिसे पतिकी अपूर्णताको पूर्ण करती हों और घर-गृहस्थीको सम्पूर्णतः अपने अभिप्रायके अनुसार नया रूप दे सकती हों।

और फिर, ऐसे पुरुष भी जरूर होंगे जो स्निग्ध और आर्द्र लाड़-प्यारके आवेशसे हमेशा ऊपरसे नीचे तक ढके रहना कतई पसन्द नहीं करते।

वे स्त्रीको चाहते हैं सम्पूर्ण स्त्रीके रूपमें ; वे चाहते हैं युगलका अनुसंग यानी दोनोंका संजोग या संग-साथ। वे जानते हैं कि स्त्री जहाँ यथार्थ स्त्री है, पुरुषको वहीं यथार्थ पौरुषके लिए अवकाश मिलता है। नहीं तो उसे लालन-रसना-लालायित बच्चेकी तरह चीनीके खिलौनेसे ही अपना जी बहलाना पड़ता है। 'मा'की 'दासी'के साथ दाम्पत्य-जीवन बितानेके समान ऐसी कमजोरी पुरुषके जीवनमें और क्या हो सकती है ?

शशांकने अपनी स्त्रीके अन्दर नित्य-स्नेहमयी सावधान 'मा'को पाया था। इसीसे उसका हृदय-मन था अपरितृप्त। ऐसी अवस्थामें ऊर्मी उसके दरवाजेके पास आ खड़ी हुई, और तब संघात शुरू हो गया, जिसका परिणाम हुआ ट्रैजिडी, दुःखान्त। दूसरा पहलू देखो तो, अति-निर्भर-लोलुप स्त्रियाँ भी संसारमें बहुत मिलेंगी। वे ऐसे पुरुषको चाहती हैं जो उनके हृदय-यात्राके मोटर-रथके शोफर हो सकें। वे चाहती हैं पतिगुरुको, पदधूलिकी भिखारिन हैं वे। लेकिन इससे विपरीत-जातकी स्त्रियाँ भी जरूर होंगी, जो अति-लालनको न सह सकनेवाले पुरुषको ही चाहती हैं, जिन्हें पाकर उनका नारीत्व पूर्ण परिणतिको प्राप्त हो। दैवयोगसे ऊर्मी उसी जातकी स्त्री है। शुरूसे ही चालक और गुरुको पाकर उसका हृदय काँपने लगा था। ठीक उसी समय वह ऐसे पुरुषको पा गई जिसका चित्त, अपनी गैरजानकारीमें, स्त्रीको ही ढूंढ़ रहा था। जिसके साथ उसकी लीला अपने जीवनकी सम-भूमिपर सम्भव हो सकती है वही उसका यथार्थ साथी है।

भाग्यके अन्यायको सुधारनेकी कोशिश की गई तो सामाजिक अन्याय उग्र हो उठा। बस, इतनी-सी बात है। उपसंहारमें इतना कह देना ठीक होगा कि सभी स्त्रियोंके अन्दर 'मा' और 'प्रिया' दोनों मौजूद हैं। उनमें कोई मुख्य होती है तो कोई गौण, कोई आगे चलती है तो कोई पिछड़ जाती है ; इसीसे उनमें तारतम्य दिखाई देता है।

रवीन्द्र-साहित्य

पहला भाग

सौगात

पूजाके दिन करीब हैं। भण्डार तरह-तरहकी चीजोंसे भरा पड़ा है। कितनी बनारसी साड़ियाँ, कितने गहने, और दूध-दही, तरह-तरहकी मिठाइयाँ।

मा सौगात भेजा चाहती है।

बड़ा लड़का परदेशमें सरकारी नौकरी करता है; मझला लड़का सौदागर है, घरमें नहीं रहता; और भी कई लड़के हैं जो आपसमें भाई-भाई लड़कर अलग मकानोंमें रहने लगे हैं। और भी कुटुम्बके लोग हैं जो देश-परदेशमें बिखरे हुए हैं।

गोदका लड़का सदर-दरवाजेपर खड़ा सवेरेसे देख रहा है, सौगातोंका ताँता बँध गया है, दास-दासियाँ रंग-बिरंगे कपड़ोंसे ढककर भर-भर थाल सौगात लिये जा रहे हैं।

दिन खतम हो गया। सौगात सब जा चुकी। दिनके अन्तिम नैवेद्यकी सोनेकी डाली लेकर सूर्यास्तकी अन्तिम आभा नक्षत्रलोकके मार्गमें विलीन हो गई।

बच्चेने घरके भीतर आकर मासे कहा—"मा, सबको तुमने सौगात दी,—मुझे नहीं !"

माने हँसकर कहा—"सबको सब दे चुकी, अब तेरे लिए क्या बचा है, देख !"

इतना कहकर माने बच्चेको बड़े प्यारसे पुचकारकर उसकी मिठ्ठी ले ली।

बच्चेने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा—"मुझे सौगात नहीं देगी ?"

"जब तू दूर जायगा, तब तेरे लिए सौगात भेजूँगी।"

"और पास रहूंगा तो, तू अपने हाथकी चीज नहीं देगी ?"

माने दोनों हाथ बढ़ाकर बच्चेको गोदमें उठा लिया; बोली—"मेरे हाथकी चीज तो तू है बेटा !"

दो बहन

शर्मिला

किसी-किसी विद्वानके मुँह सुना है, औरतें दो तरहकी होती हैं, यानी उनकी दो जात हैं।

एक जात है मुख्यतः 'मा' की; और दूसरी 'प्रिया' की।

अगर ऋतुओंके साथ तुलना की जाय, तो 'मा' है वर्षाऋतु। पानी देती है, फल देती है, ताप दूर करती है; ऊर्ध्वलोकसे अपनेको विगलित करके देती ही रहती है, शुष्कता दूर करती है, हमारी कमियोंको पूरा करती है।

और 'प्रिया' है वसन्तऋतु। उसका रहस्य गहरा है, मधुर है उसका मायामन्त्र, उसकी चंचलता खूनमें तरंगें पैदा करती रहती है, वे तरंगें चित्तके उस मणिमय कोठे तक पहुंचती रहती हैं जहाँ सोनेकी वीणामें एक छुपा-हुआ तार चुपचाप पड़ा उस झंकारकी बाट देख रहा है जिस झंकारसे सारे शरीर और मनमें अनिर्वचनीय वाणी बज-बज उठती है।

1310

शशाङ्ककी स्त्री शर्मिला मा-जातकी है।

बड़ी-बड़ी शान्त आँखें हैं; धीर-गम्भीर है उनकी चितवन। पानीसे भरे नये बादल-जैसा भरा-पूरा सुडौल शरीर है उसका, कोमल तर चिकना साँवला। माँगमें सिन्दूरकी अरुण रेखा है; साड़ीकी किनारी है काली खूब चौड़ी। दोनों हाथोंमें मगर-मुँही मोटे-मोटे सोनेके कड़े हैं, उस गहनेकी भाषा साज-शृङ्गारकी भाषा नहीं, शुभ-साधनकी भाषा है।

पतिके जीवन-लोकमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ उसके साम्राज्यका प्रभाव शिथिल हो। स्त्रीके अति-लालनकी छायामें पतिका मन हो गया है असावधान। फाउण्टेन-कलम मामूली-सी चूकसे अगर टेबिलके इधर-उधर कहीं क्षण-भरके लिए आँखोंके ओझल हो जाय, तो उसे खोज-निकालनेकी जिम्मेदारी स्त्रीपर है। नहाने जानेके पहले हाथ-घड़ी कहाँ रख दी थी, सहसा शशाङ्कको उसकी याद नहीं रहती; पर स्त्रीकी निगाह उसपर जरूर पड़ जाती। दो रंगके दो मोजे पहनकर जब कि वह बाहर जानेके लिए तैयार है, तब स्त्री आकर उसकी गलती सुझाती है। बंगला महीनेके साथ अंग्रेजी महीनेकी तारीखका जोड़ मिलाकर वह मित्रोंको न्योता देता है; उसके बाद असमयमें अचानक बगैर उम्मीदके अतिथि आ जाते हैं तो उसकी सारी आफत उठानी पड़ती है स्त्रीको। शशाङ्क निश्चित जानता है कि रोजमर्राके काम-काजमें कहीं कोई खामी होते ही स्त्रीके हाथसे उसका सुधार होगा ही; इसीसे गलती करना उसके स्वभावमें शामिल हो गया है। स्त्री स्नेहके साथ तिरस्कारके स्वरमें कहती—"अब मुझसे

नहीं होता। तुम्हें क्या कभी भी समझ न आयेगी।" पर, अगर उसमें समझ आ जाती तो शर्मिलाके दिन हो जाते गैर-आबाद फसलकी जमीनके समान।

आज शशाङ्क शायद मित्रोंमें से किसीके घर न्योतेमें गया है। रातके ग्यारह बज गये, बारह बज गये, ब्रिजका खेल चल रहा है। सहसा एक मित्र हँसता हुआ बोल उठा—"लो, तुम्हारा वारण्ट लेकर आ गया पियादा। मियाद तुम्हारी खतम !"

वही चिर-परिचित नौकर है महेश। सफेद मूँछ, सिरके बाल काले, बदनपर मिरजई, कंधेपर रंगीन झाड़न, बगलमें बाँसकी लाठी। उसकी 'माजी'ने उसे भेजा है, 'बाबू सा'ब यहाँ हैं क्या ?' 'माजी'को डर है कि लौटते वक्त अँधेरेमें कोई हादसा न हो जाय। साथमें लालटेन भी भेजी है।

शशाङ्क झुंझलाकर ताश पटकके उठ खड़ा होता। मित्र कहते, "अहा, बेचारा अरक्षित पुरुष, अकेला कैसे जाय !" घर आकर शशाङ्क स्त्रीसे जो बातें करता, न तो उसकी भाषा मुलायम होती और न शैली ही शान्त होती। शर्मिला चुपचाप उसकी डाट-डपटको सह लेती। क्या करे, उससे रहा नहीं जाता। वह अपने मनसे इस आशङ्काको किसी भी तरह निकाल ही नहीं सकती कि उसकी गैरहाजिरीमें दुनिया-भरकी तमाम सम्भव-असम्भव आफतें उसके पतिकी राहमें साजिशके लिए तैयार खड़ी हैं।

बाहर आदमी आया है मिलने, शायद कामकी ही बात हो रही होगी।

क्षण-क्षणमें भीतरसे छोटी-छोटी चिटें आ रही हैं—"याद है, कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज जल्दी खानेको आना।"

शशाङ्क गुस्सा भी होता और हार भी मान लेता। उसने बड़े दुःखसे एक बार स्त्रीसे कहा था—"दुहाई है तुम्हें, चक्रवर्ती-घरानेकी गृहणीकी तरह तुम किसी देवी-देवताकी शरण ले लो। तुम्हारा पूरा ध्यान मुझ अकेलेके लिए बहुत ज्यादा है। देवी-देवताको उसमेंसे कुछ बाँट दो तो मेरे लिए वह बड़ा आरामदे हो जायगा। उनसे तुम चाहे कितनी ही ज्यादती क्यों न करो, उन्हें जरा भी आपत्ति न होगी; पर मैं हूं आदमी, आदमी बड़ा कमजोर होता है।"

शर्मिलाने कहा—"हाय हाय, एक बार काकाजीके साथ मैं हरिद्वार गई थी, याद है उस वक्तकी, तुम्हारे मनकी हालत तब कैसी हो गई थी?"

अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, इस बातकी सालङ्कार व्याख्या किसी दिन खुद शशाङ्कने ही की थी स्त्रीके आगे। वह जानता था कि उस अत्युक्तिसे शर्मिला जैसी अनुतप्त होगी वैसी आनन्दित हुए बिना भी न रहेगी। आज वह अपने उस अमित भाषणका प्रतिवाद करे तो कैसे? चुपचाप उसे मान ही लेना पड़ा, सो बात नहीं, दूसरे दिन सवेरे-सवेरे जब उसके कुछ जुकाम-सा मालूम दिया तो शर्मिलाकी कल्पनाके अनुसार उसे कुनैन खानी पड़ी दस ग्रेन, और ऊपरसे तुलसी-पत्तेका रस मिलाकर चाय पीनी पड़ी सो अलग। विरोध करनेका मुँह ही नहीं रहा, करता क्या? कारण, इसके पहले ठीक

ऐसी ही हालतमें उसने विरोध किया था, कुनैन नहीं ली; नतीजा यह हुआ कि बुखार आ गया; और शशांकके इतिहासमें उसका वर्णन अमिट अक्षरोंमें लिख गया।

घरमें आरोग्य और आरामके लिए शर्मिलाकी जितनी सस्नेह व्यग्रता है, बाहर सम्मान-रक्षाके लिए सावधानी भी उतनी ही सतेज है। एक दृष्टान्त याद आ गया।

एक बार वह नैनीताल गया था हवा बदलने। पहले ही से पूरे सफरके लिए शुरूसे आखिर तक रेलका डब्बा रिजर्व था। किसी जंक्शनमें गाड़ी बदलकर वह भोजनकी खोजमें चल दिया। वापस आकर देखा कि वरदी पहने एक दुर्जनमूर्ति उन्हें बेदखल करनेकी फिराकमें लगा हुआ है! स्टेशन-मास्टरने आकर एक विश्व-विख्यात जनरलका नाम लेकर कहा, कमरा उन्हींका है, गलतीसे दूसरा नाम लग गया है। शशांक आँखें फाड़कर बड़ी इज्जत दिखाकर दूसरे किसी कमरेमें जानेका इन्तजाम करने लगा, इतनेमें शर्मिला गाड़ीमें चढ़कर दरवाजा रोकके बोल उठी—"मैं देखना चाहती हूं कौन हमें उतारता है! बुला लाओ अपने जनरलको।" शशांक अब तक सरकारी पदाधिकारी और उनके ऊपरवालोंके जाति-गोत्रवालों तकसे काफी बचकर चलनेमें अभ्यस्त था। वह घबड़ाकर बोला—"अरे, तुम कर क्या रही हो, और भी तो डब्बे हैं, जरूरत क्या है बखेड़ेकी।" शर्मिलाने उसकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया। अन्तमें जनरल साहब रिफ्रेशमेण्ट-रूमसे खाना खतम करके चुरुट मुँहमें दिये निकले; और

दूरसे स्त्री-मूर्तिकी उग्रता देखकर खुद ही हट गये। शशांकने स्त्रीसे पूछा—"जानती हो वह कितना बड़ा आदमी था?" स्त्रीने कहा—"जाननेकी गर्ज नहीं मुझे। जो डब्बा हमारा है, उस डब्बेमें वह तुमसे बड़ा हरगिज नहीं।"

शशांकने पूछा—"अगर बेइज्जत करता?"

शर्मिलाने जवाब दिया—"तुम किसलिए हो?"

शशांक शिवपुर कालेजका पास किया हुआ इञ्जीनियर है। घरकी जीवन-यात्रामें उसकी चाहे कितनी ही ढिलाई हो, पर नौकरीके काममें वह पक्का है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसके कामकी जगहपर जिस तुंगी-ग्रहकी निर्मम दृष्टि है, वह है जिसको कि चालू भाषामें कहते हैं बड़ा-साहब। वह स्त्री-ग्रह नहीं है। शशाङ्क डिस्ट्रिक्ट-इञ्जीनियरके पदपर जब कि ऐक्टिनी कर रहा था, ठीक उसी समय उसकी आसन्न उन्नति घूम गई उलटी तरफ। योग्यताको लाँघकर, तजुर्बा बिलकुल कच्चा होते हुए भी, जिस अंग्रेज युवकने आकर, जिसके कि अभी ठीकसे मूंछें भी न आई थीं, उसका आसन दखल किया, उसके अचिन्तनीय आविर्भावमें थी अधिकारियोंमेंसे सबसे ऊंचे मालिकके सम्बन्ध और सिफारिशकी जीवनीशक्ति।

शशांकने समझ लिया कि इस अप्रवीण नवीनको ऊपरके आसनपर बिठाकर नीचेकी तहसे उसीको काम चलाते रहना पड़ेगा।

एक अफसरने उसकी पीठ ठोंककर कहा—"वेरी सॉरी

मजूमदार, जितनी जल्दी हो सकेगा, तुम्हारे लिए अच्छी जगह तजबीज की जायगी।" ये दोनों ही एक ही *फ्रीमेसन लॉजके चट्टे-बट्टे हैं।

फिर भी, भरोसा और तसल्ली पानेपर भी, साराका सारा मामला मजूमदारके लिए बहुत ही कड़ुआ हो उठा। घर आकर छोटे-मोटे सभी विषयोंमें उसने खिटखिट शुरू कर दी। अचानक उसकी नजर पड़ी, आफिस-रूमके एक कोनेमें जाला जमा हुआ है। सहसा उसे ऐसा लगा कि चौकीपर जो हरे रंगका ढकना पड़ा है उसका रंग उसके लिए असह्य है। नौकर बरंडेमें बुहारी लगा रहा था, धूल उड़नेकी वजहसे उसपर जोरसे बिगड़ पड़ा। अनिवार्य धूल रोज ही उड़ती है, पर उसका बिगड़ना आज यह नया है।

अपने असम्मानकी बात उसने स्त्रीसे नहीं कही। सोचा कि अगर बात उसके कान तक पहुंच गई तो नौकरीकी जटिलतामें एक गाँठ और पड़ जायगी; हो सकता है कि वह अधिकारियोंसे जाकर झगड़ा ही कर आवे कड़ी भाषामें। खासकर उस डोनल्डसनपर तो वह बहुत ही नाराज है। एक बार वह सर्किट-हाउसके बगीचेमें बन्दरोंका ऊधम दबाने गया था, तब उसने छर्रेसे शशाङ्कके हैटमें छेद कर दिया था। कोई दुर्घटना नहीं हुई, पर हो तो सकती थी। लोग कहते हैं कि दोष शशाङ्कका ही था, और शायद इसीसे डोनल्डसनपर उसका गुस्सा और भी बढ़ गया।

* *Freemason*=यूरोपीय एक खास तन्त्रकी गुप्त-सभाका सदस्य, जिसके पास खास चिह्न होते हैं जिससे वे एक दूसरेको पहचानते हैं। *Lodge*.

गुस्सेकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि जो गोली बन्दरको लक्ष्य करके छोड़ी गई थी वह शशाङ्कके हैटमें लगी। दुश्मन दोनोंको एक ही बात बताकर खूब जोरसे हँस पड़े थे।

शशाङ्ककी पदावनतिकी खबर शर्मिलाने खुद ही अपनी कोशिशसे जान ली। पतिका रंग-ढंग देखकर ही वह समझ गई थी कि उसके कहीं-न-कहींसे कोई काँटा चुभ रहा है। उसके बाद कारण ढूँढ़नेमें उसे देर नहीं लगी। कॉन्स्टीट्यूशनल एजिटेशनके रास्ते वह नहीं गई, वह गई सेल्फ-डिटर्मिनेशनकी तरफ। उसने पतिसे कहा—"बस, अब नहीं, अभी तुरत काम छोड़ दो।"

काम अगर वह छोड़ देता, तो अपमानका जोंक उसकी छातीपरसे छूटकर गिर जाता। पर उसकी ध्यान-दृष्टिके सामने था बँधी तनखाका अन्नका खेत; और उसके पश्चिम-दिगन्तमें थी पेन्शनकी स्थायी सुनहरी रेखा।

शशाङ्कमौली जिस साल एम० एस-सी० डिग्रीके सबसे ऊँची चोटीपर पहुंचा उसी साल उसके ससुरने शुभकार्यमें देर न करके शर्मिलाके साथ उसका ब्याह कर दिया। धनी ससुरकी मददसे ही उसने इञ्जीनियरिंगकी परीक्षा पास की। उसके बाद नौकरीमें जल्दी तरक्कीके लक्षण देख राजाराम बाबू अपने भावी जमाईके आर्थिक क्रमविकाशका निर्णय करके निश्चिन्त हो गये। उनकी लड़कीने भी आज तक कभी यह महसूस नहीं किया कि उन लोगोंकी हालतमें कोई खास परिवर्तन हुआ है।

घर-गृहस्थीमें तो कोई कमी आई ही नहीं, साथ ही मायके जैसा चाल-चलन वहाँ भी ज्योंका त्यों कायम रहा।

इसका कारण यह था कि पारिवारिक राज्यमें सारी विधि-व्यवस्था शर्मिलाके ही अधिकारमें थी। उसके कोई सन्तान नहीं हुई, होनेकी आशा भी नहीं। पतिका सारा रोजगार अखण्डरूपसे उसीके हाथमें आता। कोई खास जरूरत पड़नेपर घरकी अन्नपूर्णाके आगे हाथ पसारनेके सिवा शशांकके लिए और कोई चारा नहीं। माँग असंगत होती तो नामंजूर हो जाती और उसे वह सिर झुकाता हुआ मान भी लेता; और उसकी निराशा और-किसी तरफसे मधुर रूपसे पूरी हो जाती।

शशांकने कहा—"नौकरी छोड़ देना मेरे लिए कुछ भी नहीं। पर तुम्हारे लिए मैं सोचता हूं, तुम्हीं तकलीफ उठाओगी।"

शर्मिलाने कहा—"उससे भी ज्यादा तकलीफ तब होगी जब अन्यायको निगलते वक्त वह गलेमें अटक जायगा।"

शशांकने कहा—"काम तो करना ही चाहिए; गोदका छोड़कर पेटवालेको किस मुहल्लेमें ढूंढ़ता फिरूंगा?"

"जहाँ तुम्हारी नजर नहीं पड़ती। तुम जिसे मजाकमें कहते हो, तुम्हारी नौकरीका 'लूची'स्तान, बेलूचिस्तानकी मरुभूमिके उस पार है, उसके बाहरके संसारको तो तुम किसी गिनतीमें ही नहीं लाते।"

"कैसी आफत है! संसारका क्या ठिकाना, कहाँ तक है! उसका सर्वे करने कौन जायगा? उतनी बड़ी दूरबीन कहाँ मिलेगी?"

"बड़ी-भारी दूरबीनकी जरूरत नहीं। मेरे एक भाई लगते हैं, मथुरा दादा, कलकत्ताके बड़े कण्ट्राक्टर हैं वे, उनके साथ साझेमें काम करना, उसीसे अपना काम चल जायगा।"

"साझा वजनमें बराबर न होगा। अपना पल्ला कुछ हल्का रहेगा। बूतेसे बाहर लंगड़ाते हुए साझा करनेसे इज्जत न रहेगी।"

"अपनी तरफसे कमी किस बातकी है? तुम्हें मालूम है, बापूजी मेरे नामसे जो बैङ्कमें रुपया जमा करा गये हैं वह बढ़ ही रहा है। साझीदारके आगे तुम्हें छोटा नहीं होना पड़ेगा।"

"यह कैसे हो सकता है। वह रुपया तुम्हारा है।"—कहता हुआ शशांक उठ खड़ा हुआ। बाहर आदमी बैठे हैं।

शर्मिलाने कुड़ता पकड़कर पतिको बिठा लिया; बोली—"मैं भी तो तुम्हारी ही हूं।"

फिर बोली—"निकालो जेबमें से फाउण्टेनपेन, यह लो चिट्ठीका कागज, लिखो इस्तीफा। जब तक इसे डाकमें नहीं छुड़वाऊँगी, मुझे शान्ति नहीं।"

"और शायद मुझे भी शान्ति नहीं मिलनेकी।"

लिख दिया इस्तीफा।

दूसरे ही दिन शर्मिला कलकत्ता चल दी। वहाँ जाकर मथुरा-दादाके घर ठहरी। उसने उलाहनेके स्वरमें कहा—"बहनकी खबर तो कभी लेते ही नहीं!" कोई स्त्री प्रतिद्वन्द्वी

होती तो कहती—"तुम भी तो नहीं लेतीं ?" पुरुषके मगजमें यह जवाब आया ही नहीं। कसूर मान लिया। बोले— "साँस लेने तककी फुरसत नहीं पाता। खुद अपनेको ही भूल गया हूं, कुछ ध्यान ही नहीं रहता। और, तुमलोग भी तो दूर-दूर रहते हो।"

शर्मिलाने कहा—"अखबारोंमें देखा था, मयूरभंज या मथुरगंज कहाँ तो एक 'ब्रिज' बन रहा है, उसका काम मिला है तुम्हें। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। उसी वक्त मनमें आई कि खुद जाकर मथुरा-दादाको कांग्रेचुलेट कर आऊँ।"

"जरा सब्र करो बहन। अभी समय नहीं हुआ।"

बात यह थी कि उस काममें नकद रुपया डालनेकी जरूरत थी। मारवाड़ी धनीके साथ साझेमें काम करनेकी बात थी। अन्तमें गुल खिला कि जिन शर्तोंपर वह काम करना चाहता है, उसमें मलाई-मलाई सब उसीके हाथ पड़ेगी, उनके हिस्सेमें खुरचन रह जायगी, सो भी तलेकी जली हुई। इसीसे वे दुबिधामें पड़कर पीछे हटनेकी सोच रहे हैं।

शर्मिलाने उतावलीके साथ कहा—"ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। अगर साझेमें ही काम करना है तो हमलोगोंके साथ करो। ऐसा अच्छा काम तुम्हारे हाथसे निकल जाय तो बड़े अफसोसकी बात होगी। मेरे रहते हुए ऐसा हरगिज नहीं हो सकता, चाहे तुम कुछ भी क्यों न कहो।"

इसके बाद लिखापढ़ी होनेमें देर नहीं लगी; मथुरा-दादाका हृदय भी पिघल गया।

रोजगार जोरसे चलने लगा। इसके पहले शशाङ्कने नौकरीकी जिम्मेदारी लेकर काम किया है, उस जिम्मेदारीकी एक हद थी। उसमें मालिक थे अपनेसे बाहर; उसमें एकका दावा और दूसरेका देना दोनों बराबरके वजनपर चला करते थे। अब अपना ही प्रभुत्व अपनेको चलाता है। दावा और देना दोनों एक हो गये हैं। ये दिन छुट्टी और कामके ताने-बानेसे बुने हुए हों सो बात नहीं, इसकी बुनावट गफ यानी ठोस है। जो जिम्मेदारी शशाङ्कके मनपर सवार है वह इसलिए और-भी ज्यादा कड़ी है कि मनमें आते ही उसे छोड़ा जा सकता है। और-कुछ नहीं, स्त्रीका कर्ज उसे चुकाना ही है; उसके बाद इतमीनानसे धीरे-सुस्ते चलनेका वक्त मिलेगा। बायें हाथकी कलाईमें घड़ी, सिरपर सोलेका हैट, आस्तीन चढ़ी हुई, खाकी पैण्ट और उसपर चमड़ेका कमरबन्द कसा हुआ, पैरोंमें मोटे तलेके बूट-जूते और आँखोंपर धूपसे बचनेका रंगीन चश्मा चढ़ाकर शशाङ्क जोरोंसे कामपर जुट गया। स्त्रीके कर्जकी नैया किनारे लगना ही चाहती है, मगर फिर भी वह स्टीम नहीं घटाना चाहता; उसका मन गरम हो उठा है।

इसके पहले घर-गृहस्थीके आमद-खर्चकी धारा एक ही नालेसे बहा करती थी, अब उसकी दो शाखाएँ हो गईं। एक गई बैङ्ककी तरफ और एक घरकी तरफ। शर्मिलाको जितना पहले मिलता था उतना ही अब मिलता है; वहाँके लेन-देनका रहस्य पहलेकी तरह आज भी शशाङ्ककी जानकारीके बाहर है। और, कारबारका चमड़ेकी जिल्दवाला मोटा खाता शर्मिलाके लिए दुर्गम दुर्गके सिवा और-कुछ नहीं। उससे कोई नुकसान नहीं। पर, पतिके

व्यापारी-जीवनका घर-द्वार शर्मिलाकी घर-गृहस्थीके इलाकेसे बिल्कुल बाहर पड़ जानेसे उस तरफसे अकसर उसके नियम-कानूनकी उपेक्षा होने लगी। शर्मिला विनती करके कहती, "इतनी ज्यादती न करो, तबीयत खराब हो जायगी।" पर कोई नतीजा नहीं निकलता। और ताज्जुब इस बातका है कि तबीयत भी खराब नहीं होती। तन्दुरुस्तीकी दुश्चिन्ता, आराम न करनेपर अफसोस, ठीक वक्तपर खाने-पीने और सोने-उठनेकी तागीद इत्यादि दाम्पत्यधर्मके लगभग सभी तकाजोंकी जोरोंके साथ उपेक्षा करके शशाङ्क तड़के ही उठकर अपनी सेकेण्डहैण्ड फोर्ड गाड़ी खुद हाँकता हुआ निकल जाता; और दो-ढाई बजे घर लौटता। घर आकर खरी-खोटी सुनता और झटपट खाना खाकर फिर कामपर चल देता।

एक दिन उसकी मोटरसे और-किसीकी गाड़ीकी भिड़न्त हो गई। खुद बाल-बाल बच गया; पर गाड़ीको काफी नुकसान पहुंचा। गाड़ी मरम्मतके लिए कारखाने भेज दी। शर्मिला बहुत ही चंचल हो उठी। रुँधे हुए कंठसे बोली—"अब तुम खुद गाड़ी नहीं चला सकोगे।"

शशाङ्कने उसकी बातको हँसीमें उड़ाते हुए कहा—"पराये हाथकी आफत भी तो ठीक उसी जातकी दुश्मन है।"

एक दिन किसी मरम्मतके कामकी देख-भाल करने गया तो पैक-बक्सकी कील जूतेके तलेको पार करके उसके पाँवमें घुस गई। अस्पताल जाकर बैण्डेज कराया और धनुष्टङ्कारसे बचनेका इञ्जेक्शन लेकर घर लौटा। उस दिन शर्मिला रो दी; बोली—"बस, अब कुछ दिन आराम करो।"

शशाङ्कने बहुत ही संक्षेपमें कहा—"काम ?" इससे संक्षेपमें वह कह ही क्या सकता था।

शर्मिलाने कहा—"लेकिन—"

शशाङ्क बिना कुछ कहे-सुने ही कामपर चल दिया।

शर्मिलाकी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह ज्यादा जोर देकर कोई बात कहे। क्योंकि अपने क्षेत्रमें पुरुषका जोर दिखाई देने लगा है। युक्ति-तर्क और आरजू-मिन्नत सबके ऊपर एक ही बात है, "काम है।" शर्मिला बिना-कारण व्याकुल होकर बैठी रहती। देर होती तो सोचती, शायद मोटर टकरा गई होगी। धूपमें घूमनेकी वजहसे पतिके चेहरेपर सुर्खी देखती तो समझ लेती, जरूर इन्फ्लुएञ्जा है। डरते-डरते डाक्टरकी बात छेड़ना चाहती, पर पतिका रुख देखकर वहींकी वहीं रुक जाती। होते-होते ऐसा हो गया कि जी खोलकर उद्वेग प्रकट करनेकी हिम्मत भी वह खो बैठी।

शशाङ्कका यह हाल कि देखते-देखते वह घाममें-तड़का तरल्ला हो गया; स्वभाव हो गया चिड़चिड़ा। ऊँचा तंग कोट, तंग फुरसत, तेज चाल, बातचीत चिनगारी-सी संक्षिप्त। शर्मिलाकी सेवा उसकी द्रुत लयके साथ ताल मिलाकर चलनेकी भरसक कोशिश करती है। स्टोवके पास खाने-पीनेकी कोई-न-कोई चीज हमेशा गरम रखनी पड़ती, कोई ठीक नहीं कि कब अचानक कह बैठें, "चल दिया, लौटनेमें देर होगी।" मोटरगाड़ीमें भी सोडावाटर और छोटे टीनके डब्बेमें बन्द खुश्क खाना हरदम तैयार रखा रहता है। ओडीकोलनकी शीशी हर वक्त ऐसी

रवीन्द्र-साहित्य

पहला भाग

सौगात

पूजाके दिन करीब हैं। भण्डार तरह-तरहकी चीजोंसे भरा पड़ा है। कितनी बनारसी साड़ियाँ, कितने गहने, और दूध-दही, तरह-तरहकी मिठाइयाँ।

मा सौगात भेजा चाहती है।

बड़ा लड़का परदेशमें सरकारी नौकरी करता है; मझला लड़का सौदागर है, घरमें नहीं रहता; और भी कई लड़के हैं जो आपसमें भाई-भाई लड़कर अलग मकानोंमें रहने लगे हैं। और भी कुटुम्बके लोग हैं जो देश-परदेशमें बिखरे हुए हैं।

गोदका लड़का सदर-दरवाजेपर खड़ा सवेरेसे देख रहा है, सौगातोंका ताँता बँध गया है, दास-दासियाँ रंग-बिरंगे कपड़ोंसे ढककर भर-भर थाल सौगात लिये जा रहे हैं।

दिन खतम हो गया। सौगात सब जा चुकी। दिनके अन्तिम नैवेद्यकी सोनेकी डाली लेकर सूर्यास्तकी अन्तिम आभा नक्षत्रलोकके मार्गमें विलीन हो गई।

बच्चेने घरके भीतर आकर मासे कहा—"मा, सबको तुमने सौगात दी,—मुझे नहीं !"

माने हँसकर कहा—"सबको सब दे चुकी, अब तेरे लिए क्या बचा है, देख !"

इतना कहकर माने बच्चेको बड़े प्यारसे पुचकारकर उसकी मिट्ठी ले ली।

बच्चेने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा—"मुझे सौगात नहीं देगी ?"

"जब तू दूर जायगा, तब तेरे लिए सौगात भेजूँगी।"

"और पास रहूंगा तो, तू अपने हाथकी चीज नहीं देगी ?"

माने दोनों हाथ बढ़ाकर बच्चेको गोदमें उठा लिया; बोली—"मेरे हाथकी चीज तो तू है बेटा !"

दो बहन

शर्मिला

किसी-किसी विद्वानके मुँह सुना है, औरतें दो तरहकी होती हैं, यानी उनकी दो जात हैं।

एक जात है मुख्यत: 'मा' की; और दूसरी 'प्रिया' की।

अगर ऋतुओंके साथ तुलना की जाय, तो 'मा' है वर्षाऋतु। पानी देती है, फल देती है, ताप दूर करती है; ऊर्ध्वलोकसे अपनेको विगलित करके देती ही रहती है, शुष्कता दूर करती है, हमारी कमियोंको पूरा करती है।

और 'प्रिया' है वसन्तऋतु। उसका रहस्य गहरा है, मधुर है उसका मायामन्त्र, उसकी चंचलता खूनमें तरंगें पैदा करती रहती है, वे तरंगें चित्तके उस मणिमय कोठे तक पहुंचती रहती हैं जहाँ सोनेकी वीणामें एक छुपा-हुआ तार चुपचाप पड़ा उस झंकारकी बाट देख रहा है जिस झंकारसे सारे शरीर और मनमें अनिर्वचनीय वाणी बज-बज उठती है।

शशाङ्ककी स्त्री शर्मिला मा-जातकी है।

बड़ी-बड़ी शान्त आँखें हैं; धीर-गम्भीर है उनकी चितवन। पानीसे भरे नये बादल-जैसा भरा-पूरा सुडौल शरीर है उसका, कोमल तर चिकना साँवला। माँगमें सिन्दूरकी अरुण रेखा है; साड़ीकी किनारी है काली खूब चौड़ी। दोनों हाथोंमें मगर-मुँही मोटे-मोटे सोनेके कड़े हैं, उस गहनेकी भाषा साज-शृङ्गारकी भाषा नहीं, शुभ-साधनकी भाषा है।

पतिके जीवन-लोकमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ उसके साम्राज्यका प्रभाव शिथिल हो। स्त्रीके अति-लालनकी छायामें पतिका मन हो गया है असावधान। फाउण्टेन-कलम मामूली-सी चूकसे अगर टेबिलके इधर-उधर कहीं क्षण-भरके लिए आँखोंके ओझल हो जाय, तो उसे खोज-निकालनेकी जिम्मेदारी स्त्रीपर है। नहाने जानेके पहले हाथ-घड़ी कहाँ रख दी थी, सहसा शशाङ्कको उसकी याद नहीं रहती; पर स्त्रीकी निगाह उसपर जरूर पड़ जाती। दो रंगके दो मोजे पहनकर जब कि वह बाहर जानेके लिए तैयार है, तब स्त्री आकर उसकी गलती सुझाती है। बंगला महीनेके साथ अंग्रेजी महीनेकी तारीखका जोड़ मिलाकर वह मित्रोंको न्योता देता है; उसके बाद असमयमें अचानक बगैर उम्मीदके अतिथि आ जाते हैं तो उसकी सारी आफत उठानी पड़ती है स्त्रीको। शशाङ्क निश्चित जानता है कि रोजमर्राके काम-काजमें कहीं कोई खामी होते ही स्त्रीके हाथसे उसका सुधार होगा ही; इसीसे गलती करना उसके स्वभावमें शामिल हो गया है। स्त्री स्नेहके साथ तिरस्कारके स्वरमें कहती—"अब मुझसे

नहीं होता। तुम्हें क्या कभी भी समझ न आयेगी।" पर, अगर उसमें समझ आ जाती तो शर्मिलाके दिन हो जाते गैर-आबाद फसलकी जमीनके समान।

आज शशाङ्क शायद मित्रोंमें से किसीके घर न्योतेमें गया है। रातके ग्यारह बज गये, बारह बज गये, ब्रिजका खेल चल रहा है। सहसा एक मित्र हँसता हुआ बोल उठा—"लो, तुम्हारा वारण्ट लेकर आ गया पियादा। मियाद तुम्हारी खतम!"

वही चिर-परिचित नौकर है महेश। सफेद मूँछ, सिरके बाल काले, बदनपर मिरजई, कंधेपर रंगीन झाड़न, बगलमें बाँसकी लाठी। उसकी 'माजी'ने उसे भेजा है, 'बाबू सा'ब यहाँ हैं क्या ?' 'माजी'को डर है कि लौटते वक्त अँधेरेमें कोई हादसा न हो जाय। साथमें लालटेन भी भेजी है।

शशाङ्क झुंझलाकर ताश पटकके उठ खड़ा होता। मित्र कहते, "अहा, बेचारा अरक्षित पुरुष, अकेला कैसे जाय!" घर आकर शशाङ्क स्त्रीसे जो बातें करता, न तो उसकी भाषा मुलायम होती और न शैली ही शान्त होती। शर्मिला चुपचाप उसकी डाट-डपटको सह लेती। क्या करे, उससे रहा नहीं जाता। वह अपने मनसे इस आशङ्काको किसी भी तरह निकाल ही नहीं सकती कि उसकी गैरहाजिरीमें दुनिया-भरकी तमाम सम्भव-असम्भव आफतें उसके पतिकी राहमें साजिशके लिए तैयार खड़ी हैं।

बाहर आदमी आया है मिलने, शायद कामकी ही बात हो रही होगी।

क्षण-क्षणमें भीतरसे छोटी-छोटी चिटें आ रही हैं—"याद है, कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज जल्दी खानेको आना।"

शशाङ्क गुस्सा भी होता और हार भी मान लेता। उसने बड़े दुःखसे एक बार स्त्रीसे कहा था—"दुहाई है तुम्हें, चक्रवर्ती-घरानेकी गृहणीकी तरह तुम किसी देवी-देवताकी शरण ले लो। तुम्हारा पूरा ध्यान मुझ अकेलेके लिए बहुत ज्यादा है। देवी-देवताको उसमेंसे कुछ बाँट दो तो मेरे लिए वह बड़ा आरामदे हो जायगा। उनसे तुम चाहे कितनी ही ज्यादती क्यों न करो, उन्हें जरा भी आपत्ति न होगी; पर मैं हूं आदमी, आदमी बड़ा कमजोर होता है।"

शर्मिलाने कहा—"हाय हाय, एक बार काकाजीके साथ मैं हरिद्वार गई थी, याद है उस वक्तकी, तुम्हारे मनकी हालत तब कैसी हो गई थी?"

अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, इस बातकी सालङ्कार व्याख्या किसी दिन खुद शशाङ्कने ही की थी स्त्रीके आगे। वह जानता था कि उस अत्युक्तिसे शर्मिला जैसी अनुतप्त होगी वैसी आनन्दित हुए विना भी न रहेगी। आज वह अपने उस अमित भाषणका प्रतिवाद करे तो कैसे? चुपचाप उसे मान ही लेना पड़ा, सो बात नहीं, दूसरे दिन सवेरे-सवेरे जब उसके कुछ जुकाम-सा मालूम दिया तो शर्मिलाकी कल्पनाके अनुसार उसे कुनैन खानी पड़ी दस ग्रेन, और ऊपरसे तुलसी-पत्तेका रस मिलाकर चाय पीनी पड़ी सो अलग। विरोध करनेका मुँह ही नहीं रहा, करता क्या? कारण, इसके पहले ठीक

ऐसी ही हालतमें उसने विरोध किया था, कुनैन नहीं ली; नतीजा यह हुआ कि बुखार आ गया; और शशांकके इतिहासमें उसका वर्णन अमिट अक्षरोंमें लिख गया।

घरमें आरोग्य और आरामके लिए शर्मिलाकी जितनी सस्नेह व्यग्रता है, बाहर सम्मान-रक्षाके लिए सावधानी भी उतनी ही सतेज है। एक दृष्टान्त याद आ गया।

एक बार वह नैनीताल गया था हवा बदलने। पहले ही से पूरे सफरके लिए शुरूसे आखिर तक रेलका डब्बा रिजर्व था। किसी जंक्शनमें गाड़ी बदलकर वह भोजनकी खोजमें चल दिया। वापस आकर देखा कि वरदी पहने एक दुर्जनमूर्ति उन्हें बेदखल करनेकी फिराकमें लगा हुआ है! स्टेशन-मास्टरने आकर एक विश्व-विख्यात जनरलका नाम लेकर कहा, कमरा उन्हींका है, गलतीसे दूसरा नाम लग गया है। शशांक आँखें फाड़कर बड़ी इज्जत दिखाकर दूसरे किसी कमरेमें जानेका इन्तजाम करने लगा, इतनेमें शर्मिला गाड़ीमें चढ़कर दरवाजा रोकके बोल उठी—"मैं देखना चाहती हूं कौन हमें उतारता है! बुला लाओ अपने जनरलको।" शशांक अब तक सरकारी पदाधिकारी और उनके ऊपरवालोंके जाति-गोत्रवालों तकसे काफी बचकर चलनेमें अभ्यस्त था। वह घबड़ाकर बोला—"अरे, तुम कर क्या रही हो, और भी तो डब्ब हैं, जरूरत क्या है बखेड़ेकी।" शर्मिलाने उसकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया। अन्तमें जनरल साहब रिफ्रेशमेण्ट-रूमसे खाना खतम करके चुरुट मुँहमें दिये निकले; और

दूरसे स्त्री-मूर्तिकी उग्रता देखकर खुद ही हट गये। शशांकने स्त्रीसे पूछा—"जानती हो वह कितना बड़ा आदमी था?" स्त्रीने कहा—"जाननेकी गर्ज नहीं मुझे। जो डब्बा हमारा है, उस डब्बेमें वह तुमसे बड़ा हरगिज नहीं।"

शशांकने पूछा—"अगर बेइज्जत करता?"

शर्मिलाने जवाब दिया—"तुम किसलिए हो?"

शशांक शिवपुर कालेजका पास किया हुआ इञ्जीनियर है। घरकी जीवन-यात्रामें उसकी चाहे कितनी ही ढिलाई हो, पर नौकरीके काममें वह पक्का है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसके कामकी जगहपर जिस तुंगी-ग्रहकी निर्मम दृष्टि है, वह है जिसको कि चालू भाषामें कहते हैं बड़ा-साहब। वह स्त्री-ग्रह नहीं है। शशाङ्क डिस्ट्रिक्ट-इञ्जीनियरके पदपर जब कि ऐक्टिनी कर रहा था, ठीक उसी समय उसकी आसन्न उन्नति घूम गई उलटी तरफ। योग्यताको लाँघकर, तजुर्बा बिलकुल कच्चा होते हुए भी, जिस अंग्रेज युवकने आकर, जिसके कि अभी ठीकसे मूंछें भी न आई थीं, उसका आसन दखल किया, उसके अचिन्तनीय आविर्भावमें थी अधिकारियोंमें से सबसे ऊंचे मालिकके सम्बन्ध और सिफारिशकी जीवनीशक्ति।

शशांकने समझ लिया कि इस अप्रवीण नवीनको ऊपरके आसनपर बिठाकर नीचेकी तहसे उसीको काम चलाते रहना पड़ेगा।

एक अफसरने उसकी पीठ ठोंककर कहा—"वेरी सॉरी

मजूमदार, जितनी जल्दी हो सकेगा, तुम्हारे लिए अच्छी जगह तजवीज की जायगी।" ये दोनों ही एक ही *फ्रीमेसन लॉजके चट्टे-बट्टे हैं।

फिर भी, भरोसा और तसल्ली पानेपर भी, साराका सारा मामला मजूमदारके लिए बहुत ही कड़ुआ हो उठा। घर आकर छोटे-मोटे सभी विषयोंमें उसने खिटखिट शुरू कर दी। अचानक उसकी नजर पड़ी, आफिस-रूमके एक कोनेमें जाला जमा हुआ है। सहसा उसे ऐसा लगा कि चौकीपर जो हरे रंगका ढकना पड़ा है उसका रंग उसके लिए असह्य है। नौकर बरंडेमें बुहारी लगा रहा था, धूल उड़नेकी वजहसे उसपर जोरसे बिगड़ पड़ा। अनिवार्य धूल रोज ही उड़ती है, पर उसका बिगड़ना आज यह नया है।

अपने असम्मानकी बात उसने स्त्रीसे नहीं कही। सोचा कि अगर बात उसके कान तक पहुंच गई तो नौकरीकी जटिलतामें एक गाँठ और पड़ जायगी; हो सकता है कि वह अधिकारियोंसे जाकर झगड़ा ही कर आवे कड़ी भाषामें। खासकर उस डोनल्डसनपर तो वह बहुत ही नाराज है। एक बार वह सर्किट-हाउसके बगीचेमें बन्दरोंका ऊधम दबाने गया था, तब उसने छर्रेसे शशाङ्कके हैटमें छेद कर दिया था। कोई दुर्घटना नहीं हुई, पर हो तो सकती थी। लोग कहते हैं कि दोष शशाङ्कका ही था, और शायद इसीसे डोनल्डसनपर उसका गुस्सा और भी बढ़ गया।

**Freemason*=यूरोपीय एक खास तन्त्रकी गुप्त-सभाका सदस्य, जिसके खास खास चिह्न होते हैं जिससे वे एक दूसरेको पहचानते हैं। *Lodge.*

गुस्सेकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि जो गोली बन्दरको लक्ष्य करके छोड़ी गई थी वह शशाङ्कके हैटमें लगी। दुश्मन दोनोंको एक ही बात बताकर खूब जोरसे हँस पड़े थे।

शशाङ्ककी पदावनतिकी खबर शर्मिलाने खुद ही अपनी कोशिशसे जान ली। पतिका रंग-ढंग देखकर ही वह समझ गई थी कि उसके कहीं-न-कहींसे कोई काँटा चुभ रहा है। उसके बाद कारण ढूँढ़नेमें उसे देर नहीं लगी। कॉन्स्टीट्यूशनल एजिटेशनके रास्ते वह नहीं गई, वह गई सेल्फ-डिटर्मिनेशनकी तरफ। उसने पतिसे कहा—"*बस, अब नहीं, अभी तुरत काम छोड़ दो।*"

काम अगर वह छोड़ देता, तो अपमानका जोंक उसकी छातीपरसे छूटकर गिर जाता। पर उसकी ध्यान-दृष्टिके सामने था बँधी तनखाका अन्नका खेत; और उसके पश्चिम-दिगन्तमें थी पेन्शनकी स्थायी सुनहरी रेखा।

शशाङ्कमौली जिस साल एम० एस-सी० डिग्रीके सबसे ऊँची चोटीपर पहुंचा उसी साल उसके ससुरने शुभकार्यमें देर न करके शर्मिलाके साथ उसका ब्याह कर दिया। धनी ससुरकी मददसे ही उसने इञ्जीनियरिंगकी परीक्षा पास की। उसके बाद नौकरीमें जल्दी तरक्कीके लक्षण देख राजाराम बाबू अपने भावी जमाईके आर्थिक क्रमविकाशका निर्णय करके निश्चिन्त हो गये। उनकी लड़कीने भी आज तक कभी यह महसूस नहीं किया कि उन लोगोंकी हालतमें कोई खास परिवर्तन हुआ है।

घर-गृहस्थीमें तो कोई कमी आई ही नहीं, साथ ही मायके जैसा चाल-चलन वहाँ भी ज्योंका त्यों कायम रहा।

इसका कारण यह था कि पारिवारिक राज्यमें सारी विधि-व्यवस्था शर्मिलाके ही अधिकारमें थी। उसके कोई सन्तान नहीं हुई, होनेकी आशा भी नहीं। पतिका सारा रोजगार अखण्डरूपसे उसीके हाथमें आता। कोई खास जरूरत पड़नेपर घरकी अन्नपूर्णाके आगे हाथ पसारनेके सिवा शशांकके लिए और कोई चारा नहीं। माँग असंगत होती तो नामंजूर हो जाती और उसे वह सिर झुकाता हुआ मान भी लेता; और उसकी निराशा और-किसी तरफसे मधुर रूपसे पूरी हो जाती।

शशांकने कहा—"नौकरी छोड़ देना मेरे लिए कुछ भी नहीं। पर तुम्हारे लिए मैं सोचता हूं, तुम्हीं तकलीफ उठाओगी।"

शर्मिलाने कहा—"उससे भी ज्यादा तकलीफ तब होगी जब अन्यायको निगलते वक्त वह गलेमें अटक जायगा।"

शशांकने कहा—"काम तो करना ही चाहिए; गोदका छोड़कर पेटवालेको किस मुहल्लेमें ढूंढ़ता फिरूंगा?"

"जहाँ तुम्हारी नजर नहीं पड़ती। तुम जिसे मजाकमें कहते हो, तुम्हारी नौकरीका 'लूची'स्तान, बेलूचिस्तानकी मरुभूमिके उस पार है, उसके बाहरके संसारको तो तुम किसी गिनतीमें ही नहीं लाते।"

"कैसी आफत है! संसारका क्या ठिकाना, कहाँ तक है! उसका सर्वे करने कौन जायगा? उतनी बड़ी दूरबीन कहाँ मिलेगी?"

"बड़ी-भारी दूरबीनकी जरूरत नहीं। मेरे एक भाई लगते हैं, मथुरा दादा, कलकत्ताके बड़े कण्ट्राक्टर हैं वे, उनके साथ साझेमें काम करना, उसीसे अपना काम चल जायगा।"

"साझा वजनमें बराबर न होगा। अपना पल्ला कुछ हल्का रहेगा। बूतेसे बाहर लंगड़ाते हुए साझा करनेसे इज्जत न रहेगी।"

"अपनी तरफसे कमी किस बातकी है? तुम्हें मालूम है, बापूजी मेरे नामसे जो बैङ्कमें रुपया जमा करा गये हैं वह बढ़ ही रहा है। साझीदारके आगे तुम्हें छोटा नहीं होना पड़ेगा।"

"यह कैसे हो सकता है। वह रुपया तुम्हारा है।"—कहता हुआ शशांक उठ खड़ा हुआ। बाहर आदमी बैठे हैं।

शर्मिलाने कुड़ता पकड़कर पतिको बिठा लिया; बोली—"मैं भी तो तुम्हारी ही हूं।"

फिर बोली—"निकालो जेबमें से फाउण्टेनपेन, यह लो चिट्ठीका कागज, लिखो इस्तीफा। जब तक इसे डाकमें नहीं छुड़वाऊँगी, मुझे शान्ति नहीं।"

"और शायद मुझे भी शान्ति नहीं मिलनेकी।"

लिख दिया इस्तीफा।

दूसरे ही दिन शर्मिला कलकत्ता चल दी। वहाँ जाकर मथुरा-दादाके घर ठहरी। उसने उलाहनेके स्वरमें कहा—"बहनकी खबर तो कभी लेते ही नहीं!" कोई स्त्री प्रतिद्वन्द्वी

होती तो कहती—"तुम भी तो नहीं लेतीं ?" पुरुषके मगजमें यह जवाब आया ही नहीं। कसूर मान लिया। बोले—"साँस लेने तककी फुरसत नहीं पाता। खुद अपनेको ही भूल गया हूं, कुछ ध्यान ही नहीं रहता। और, तुमलोग भी तो दूर-दूर रहते हो।"

शर्मिलाने कहा—"अखबारोंमें देखा था, मयूरभंज या मथुरगंज कहाँ तो एक 'ब्रिज' बन रहा है, उसका काम मिला है तुम्हें। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। उसी वक्त मनमें आई कि खुद जाकर मथुरा-दादाको कांग्रैचुलेट कर आऊँ।"

"जरा सब्र करो बहन। अभी समय नहीं हुआ।"

बात यह थी कि उस काममें नकद रुपया डालनेकी जरूरत थी। मारवाड़ी धनीके साथ साझेमें काम करनेकी बात थी। अन्तमें गुल खिला कि जिन शर्तोंपर वह काम करना चाहता है, उसमें मलाई-मलाई सब उसीके हाथ पड़ेगी, उनके हिस्सेमें खुरचन रह जायगी, सो भी तलेकी जली हुई। इसीसे वे दुबिधामें पड़कर पीछे हटनेकी सोच रहे हैं।

शर्मिलाने उतावलीके साथ कहा—"ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। अगर साझेमें ही काम करना है तो हमलोगोंके साथ करो। ऐसा अच्छा काम तुम्हारे हाथसे निकल जाय तो बड़े अफसोसकी बात होगी। मेरे रहते हुए ऐसा हरगिज नहीं हो सकता, चाहे तुम कुछ भी क्यों न कहो।"

इसके बाद लिखापढ़ी होनेमें देर नहीं लगी; मथुरा-दादाका हृदय भी पिघल गया।

रोजगार जोरसे चलने लगा। इसके पहले शशाङ्कने नौकरीकी जिम्मेदारी लेकर काम किया है, उस जिम्मेदारीकी एक हद थी। उसमें मालिक थे अपनेसे बाहर; उसमें एकका दावा और दूसरेका देना दोनों बराबरके वजनपर चला करते थे। अब अपना ही प्रभुत्व अपनेको चलाता है। दावा और देना दोनों एक हो गये हैं। ये दिन छुट्टी और कामके ताने-बानेसे बुने हुए हों सो बात नहीं, इसकी बुनावट गफ यानी ठोस है। जो जिम्मेदारी शशाङ्कके मनपर सवार है वह इसलिए और-भी ज्यादा कड़ी है कि मनमें आते ही उसे छोड़ा जा सकता है। और-कुछ नहीं, स्त्रीका कर्ज उसे चुकाना ही है; उसके बाद इतमीनानसे धीरे-सुस्ते चलनेका वक्त मिलेगा। बायें हाथकी कलाईमें घड़ी, सिरपर सोलेका हैट, आस्तीन चढ़ी हुई, खाकी पैण्ट और उसपर चमड़ेका कमरबन्द कसा हुआ, पैरोंमें मोटे तलेके बूट-जूते और आँखोंपर धूपसे बचनेका रंगीन चश्मा चढ़ाकर शशाङ्क जोरोंसे कामपर जुट गया। स्त्रीके कर्जकी नैया किनारे लगना ही चाहती है, मगर फिर भी वह स्टीम नहीं घटाना चाहता; उसका मन गरम हो उठा है।

इसके पहले घर-गृहस्थीके आमद-खर्चकी धारा एक ही नालेसे बहा करती थी, अब उसकी दो शाखाएँ हो गईं। एक गई बैङ्ककी तरफ और एक घरकी तरफ। शर्मिलाको जितना पहले मिलता था उतना ही अब मिलता है; वहाँके लेन-देनका रहस्य पहलेकी तरह आज भी शशाङ्ककी जानकारीके बाहर है। और, कारबारका चमड़ेकी जिल्दवाला मोटा खाता शर्मिलाके लिए दुर्गम दुर्गके सिवा और-कुछ नहीं। उससे कोई नुकसान नहीं। पर, पतिके

व्यापारी-जीवनका घर-द्वार शर्मिलाकी घर-गृहस्थीके इलाकेसे बिल्कुल बाहर पड़ जानेसे उस तरफसे अकसर उसके नियम-कानूनकी उपेक्षा होने लगी। शर्मिला विनती करके कहती, "इतनी ज्यादती न करो, तबीयत खराब हो जायगी।" पर कोई नतीजा नहीं निकलता। और ताज्जुब इस बातका है कि तबीयत भी खराब नहीं होती। तन्दुरुस्तीकी दुश्चिन्ता, आराम न करनेपर अफसोस, ठीक वक्तपर खाने-पीने और सोने-उठनेकी तागीद इत्यादि दाम्पत्यधर्मके लगभग सभी तकाजोंकी जोरोंके साथ उपेक्षा करके शशाङ्क तड़के ही उठकर अपनी सेकेण्डहैण्ड फोर्ड गाड़ी खुद हाँकता हुआ निकल जाता; और दो-ढाई बजे घर लौटता। घर आकर खरी-खोटी सुनता और झटपट खाना खाकर फिर कामपर चल देता।

एक दिन उसकी मोटरसे और-किसीकी गाड़ीकी भिड़न्त हो गई। खुद बाल-बाल बच गया; पर गाड़ीको काफी नुकसान पहुंचा। गाड़ी मरम्मतके लिए कारखाने भेज दी। शर्मिला बहुत ही चंचल हो उठी। रूँधे हुए कंठसे बोली—"अब तुम खुद गाड़ी नहीं चला सकोगे।"

शशाङ्कने उसकी बातको हँसीमें उड़ाते हुए कहा—"पराये हाथकी आफत भी तो ठीक उसी जातकी दुश्मन है।"

एक दिन किसी मरम्मतके कामकी देख-भाल करने गया तो पैक-बक्सकी कील जूतेके तलेको पार करके उसके पाँवमें घुस गई। अस्पताल जाकर बैण्डेज कराया और धनुष्टङ्कारसे बचनेका इञ्जेक्शन लेकर घर लौटा। उस दिन शर्मिला रो दी; बोली—"बस, अब कुछ दिन आराम करो।"

शशाङ्कने बहुत ही संक्षेपमें कहा—"काम ?" इससे संक्षेपमें वह कह ही क्या सकता था।

शर्मिलाने कहा—"लेकिन—"

शशाङ्क बिना कुछ कहे-सुने ही कामपर चल दिया।

शर्मिलाकी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह ज्यादा जोर देकर कोई बात कहे। क्योंकि अपने क्षेत्रमें पुरुषका जोर दिखाई देने लगा है। युक्ति-तर्क और आरजू-मिन्नत सबके ऊपर एक ही बात है, "काम है।" शर्मिला बिना-कारण व्याकुल होकर बैठी रहती। देर होती तो सोचती, शायद मोटर टकरा गई होगी। धूपमें घूमनेकी वजहसे पतिके चेहरेपर सुर्खी देखती तो समझ लेती, जरूर इन्फ्लुएञ्जा है। डरते-डरते डाक्टरकी बात छेड़ना चाहती, पर पतिका रुख देखकर वहींकी वहीं रुक जाती। होते-होते ऐसा हो गया कि जी खोलकर उद्वेग प्रकट करनेकी हिम्मत भी वह खो बैठी।

शशाङ्कका यह हाल कि देखते-देखते वह घाममें-तड़का तख्ता हो गया; स्वभाव हो गया चिड़चिड़ा। ऊँचा तंग कोट, तंग फुरसत, तेज चाल, बातचीत चिनगारी-सी संक्षिप्त। शर्मिलाकी सेवा उसकी द्रुत लयके साथ ताल मिलाकर चलनेकी भरसक कोशिश करती है। स्टोवके पास खाने-पीनेकी कोई-न-कोई चीज हमेशा गरम रखनी पड़ती, कोई ठीक नहीं कि कब अचानक कह बैठें, "चल दिया, लौटनेमें देर होगी।" मोटरगाड़ीमें भी सोडावाटर और छोटे टीनके डब्बेमें बन्द खुश्क खाना हरदम तैयार रखा रहता है। ओडीकोलनकी शीशी हर वक्त ऐसी

ऊर्मी जानती है कि उसके भाईने उसके मनको मुक्त कर दिया था। हेमन्तका कहना था कि हमारे घर क्या हैं मूर्ति ढालनेके साँचे हैं, मिट्टीके खिलौने बनाना ही उनका काम है। इसीसे तो इतने दिनोंसे विलायती जादूगर इतनी आसानीसे तेंतीस करोड़ खिलौनोंको नचाते रहे हैं। वह कहा करता था—"जब मेरा वक्त आयेगा, तो इस सामाजिक मूर्ति-गठनको तोड़नेके लिए मैं कालापहाड़ी करने निकल पड़ूंगा।" वह वक्त नहीं आया; पर ऊर्मीके मनको वह अत्यन्त सजीव बनाकर छोड़ गया है।

बस, यही हो गई मुसीबत। नीरदकी कार्यपद्धति है बहुत ही नियमबद्ध, घड़ीके काँटेकी तरह। ऊर्मीके लिए उसने पाठ्य-विषय की तरह कुछ बँधे हुए नियम बना दिये। और उपदेशके तौरपर उससे कहा—"देखो ऊर्मी, राह चलते-चलते मनको बार-बार छलकने न देना, नहीं तो मंजिलपर पहुंचने तक घड़ेमें कुछ नहीं बचेगा।"

वह कहा करता है—"तितलीकी-सी हालत है तुम्हारी, चंचल होकर घूमती फिरती हो, कुछ भी संग्रह नहीं करतीं। तुम्हें बनना चाहिए मधुमक्खी। प्रत्येक क्षणका हिसाब रखना चाहिए। जीवन असलमें विलासिता नहीं है।"

नीरदने फिलहाल इम्पीरियल लाइब्रेरीसे शिक्षा-तत्त्वकी किताबें मंगाकर पढ़ना शुरू कर दिया है, उनमें इसी तरहकी बातें लिखी हैं। उसकी भाषा किताबोंकी भाषा है, क्योंकि उसकी अपनी सहज-स्वाभाविक भाषा नहीं है। ऊर्मीको सन्देह न रहा

कि वह अपराधी है। उसका व्रत महान है; उस व्रतको भूलकर बात-बातमें उसका मन जो इधर-उधर चला जाता है उससे बार-बार वह अपनेको ही लांछित करती रहती है। सामने दृष्टान्त मौजूद है नीरदका; कैसी आश्चर्यजनक दृढ़ता है उसमें, कैसा एकाग्र लक्ष्य है, सब तरहके आमोद-प्रमोदके खिलाफ कैसी कठोर विरुद्धता है उसके अन्दर। ऊर्मीकी टेबिलपर कहानी-उपन्यास या हल्के साहित्यकी कोई किताब देखते ही नीरद उसे जब्त कर लेता है। एक दिन शामको वह ऊर्मीकी तहकीकात करने आया तो सुना कि वह अंगरेजी नाट्यशालामें सलिवैनके मिकाडो ऑपेराका सांध्य अभिनय देखने गई है। भाईके रहते हुए ऊर्मीको ऐसे मौके अकसर मिला करते थे। उस दिन नीरदने उसे काफी डाटा-फटकारा। अत्यन्त गम्भीर स्वरमें अंगरेजी भाषामें उसने कहा था—"देखो, तुमने अपने भाई साहबकी मृत्युको अपना सम्पूर्ण जीवन देकर सार्थक करनेका भार लिया है। अभीसे तुमने उस बातको भूलना शुरू कर दिया ?"

सुनकर ऊर्मीको बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा, "इस शख्सकी कैसी असाधारण अन्तरदृष्टि है। मेरी शोक-स्मृतिकी प्रबलता सचमुच ही घटती जा रही है, मैं खुद इस बातको न जान सकी। धिक है मुझे, मेरे चरित्रमें इतनी चंचलता !" ऊर्मी सावधान होने लगी, अपने पहननेके कपड़ों तकसे उसने शोभाका आभास दूर कर दिया। बगैर रंगकी मोटी साड़ी पहनने लगी वह। ड्राॅवरमें मौजूद रहनेपर भी चाकलेट खानेका लोभ उसने छोड़ दिया। ढीले मनको खूब कसके बाँधना शुरू

कर दिया, संकीर्ण चहारदीवारीके भीतर, सूखे कर्त्तव्यके खूँटेसे। उसकी जीजी उसका तिरस्कार करती; और शशांक नीरदके लिए ऐसे-ऐसे पैने विशेषणोंकी वर्षा करता रहता जो कि खास विलायती होते, और सुननेमें जरा भी मीठे नहीं लगते।

एक जगह शशांकके साथ नीरदका मेल है। शशांकका गाली देनेका आवेग जब तीव्र हो उठता तब उसकी भाषा हो जाती है अंगरेजी; और नीरदका उपदेश जब बहुत ऊंचे दरजेका होता तब उसकी वाहिका यानी सवारी हो जाती अंगरेजी। नीरदको सबसे ज्यादा बुरा लगता है ऊर्मीका निमन्त्रण-आमन्त्रणमें अपनी जीजीके घर जाना। सिर्फ वह जाती ही नहीं, जानेके लिए पूरा आग्रह रखती है। असलमें उन लोगोंके साथ ऊर्मीका जो रिश्ता है वह नीरदके सम्बन्धको खण्डित करता है।

नीरदने गम्भीर मुँह बनाकर एक दिन ऊर्मीसे कहा—"देखो ऊर्मी, तुम कुछ खयाल न करना। क्या किया जाय, तुम्हारे सम्बन्धमें मेरी एक जिम्मेवारी है, इसीसे कर्तव्य समझकर अप्रिय बात कहनी पड़ती है। मैं तुम्हें सावधान किये देता हूं, शशांक बाबूके घर जाकर हमेशा उन लोगोंसे मिलना-जुलना तुम्हारे चरित्रके लिए अस्वास्थ्यकर है। रिश्तेदारीके मोहमें तुम अन्धी हो रही हो, पर तुम्हारी दुर्गतिकी सम्भावना उसमें स्पष्ट दिखाई दे रही है।"

'ऊर्मीका चरित्र' कहनेसे जिस चीजका ज्ञान होता है उसकी पहली बन्धकी दस्तावेज नीरदके ही सन्दूकमें बन्द है; उस चरित्रमें कहीं भी कुछ हेरफेर होनेसे नीरदका ही नुकसान है। मनाही

कर देनेसे ऊर्मीका भवानीपुर जाना तरह-तरहके बहानोंसे प्रायः बन्द-सा हो गया। ऊर्मीका यह आत्म-शासन बड़े-भारी कर्ज चुकानेके माफिक था। उसके जीवनकी जिम्मेवारी लेकर नीरदने जो हमेशाके लिए अपनी साधनाको भाराक्रान्त कर रखा है, विज्ञान-तपस्वीके लिए इससे ज्यादा आत्म-अपव्यय और क्या हो सकता है।

तरह-तरहकी दिलचस्प बातोंके आकर्षणसे मनको रोक-थामकर वश करनेमें जो कष्ट है वह तो ऊर्मीको बरदाश्त हो चला; मगर फिर भी, रह-रहकर उसके मनमें ऐसी एक गहरी वेदना-सी उठती है जिसे वह चंचलता समझकर पूरी तरह दबा नहीं सकती। नीरद उसे सिर्फ चलाता ही है, पर एक क्षणके लिए भी उसकी वह साधना क्यों नहीं करता? इस साधनाके लिए ऊर्मीका मन बराबर इन्तजार किया करता है; और इस साधनाके अभावमें ही उसके हृदयका माधुर्य पूर्ण विकाशकी ओर नहीं बढ़ पाता, उसका सारा कर्तव्य निर्जीव और नीरस हो जाता है। एक-एक दिन अचानक उसे ऐसा लगता है कि नीरदकी आँखोंमें आवेश आने लगा है, अब देर नहीं, उसके हृदयका गम्भीरतम रहस्य अभी पकड़ाई देता है। किन्तु अन्तर्यामी जानते हैं, उस गम्भीर वेदनाका अस्तित्व नीरदके अन्दर अगर कहीं हो भी तो उसकी भाषा उसे नहीं मालूम। उसे वह कहकर जाहिर नहीं कर सकता; और इसीसे कहनेकी इच्छाको वह दोष दिया करता है। विचलित चित्तको गूँगा रखकर ही वह चला आता है; और इसे वह अपनी शक्तिका परिचय मानकर गर्व करता है।

कहता है, 'सेण्टिमेण्टैलिटी (भावुकता) लाना मेरा काम नहीं।' ऊर्मीको उस दिन रोनेकी इच्छा हुई, पर ऐसी उसकी दशा कि भक्तिके साथ समझ बैठी, वीरता इसीका नाम है! अपने कमजोर मनको फिर वह और भी निष्ठुरताके साथ सता-सताकर मारने लगी। पर चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करे, बीच-बीचमें यह बात उसके मनमें स्पष्ट हो ही उठती कि किसी दिन जबरदस्त शोकमें आकर जिस कर्तव्यको उसने अपनी इच्छासे ग्रहण किया था, आज अपनी उस इच्छाको कमजोर होते देख वह दूसरेकी इच्छाको ही जोरसे छातीसे चिपकाये ले रही है।

नीरद उससे साफ-साफ कहता—"देखो ऊर्मी, इतना तुम जान रखो कि साधारण स्त्रियाँ पुरुषोंसे जिन सब स्तुतियोंकी उम्मीद रखती हैं, मुझसे उनकी उम्मीद करना बिलकुल ही फजूल है। मैं तुम्हें जो कुछ भी दूंगा वह इन सब बनावटी बातोंसे कहीं ज्यादा सही और सच होगा; उसकी कीमत बहुत ज्यादा है।"

सुनकर ऊर्मी सिर झुकाये चुपचाप बैठी रहती। मन-ही-मन कहती, 'इनसे क्या कोई भी बात छिपी न रहेगी!'

ऊर्मीसे किसी भी तरह मनको बाँधते नहीं बनता। छतपर वह अकेली घूमने चली जाती है। तीसरे पहरका उजाला धीरे-धीरे धुँधला होने लगता है। शहरके ऊँचे-नीचे नाना आकारके मकानोंकी चोटियोंको पार करके दूर गंगाके घाटोंपर लगे हुए जहाजोंके मस्तूलोंके उस पार सूरज डूबने लगता है। नाना रंगोंके बादलोंकी लम्बी-लम्बी रेखाएँ दिनकी प्रान्त-सीमामें दीवार-सी

खड़ी दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे वह दीवारें भी विला जाती हैं। गिरजाकी चोटीके ऊपर चाँद दिखाई देने लगता है। धुँधले प्रकाशसे शहर स्वप्न-सा मालूम होने लगता है, जैसे कोई अलौकिक मायापुरी हो। मनमें सवाल उठता है, 'सचमुच ही क्या ऐसा अविचलित ऐसा कठिन होना चाहिए? वह क्या इतना कंजूस है? न तो छुट्टी देगा, न देगा रस?' अचानक उसका मन उन्मत्त हो उठता है। तबीयत चलती है कोई-एक जबरदस्त शरारत करनेको; उसका मन चिल्लाकर कहना चाहता है, 'मैं यह सब कुछ नहीं मानती।'

ऊर्मिमाला

नीरदने रिसर्चका जो काम हाथमें लिया था वह पूरा हो गया। यूरोपके किसी वैज्ञानिक-समितिको उसने अपना लेख भेज दिया। उन लोगोंने तारीफ की; और उसके साथ एक स्कॉलरशिप भी दी। उसने तय किया कि वहाँकी डिग्री लेनेके लिए वह विलायत जायगा।

ऊर्मीसे विदा लेते वक्त नीरदने करुणरसकी कोई बात ही नहीं कही। सिर्फ यही बात उसने बार-बार कही—"मैं जा रहा हूँ, अब मुझे सिर्फ यही आशंका हो रही है कि तुम अपने कर्तव्य पालनमें शिथिलता करोगी।"

ऊर्मीने कहा—"आप जरा भी फिकर न कीजिये।"

नीरदने कहा—"कैसे तुम्हें चलना होगा, कैसे पढ़ना होगा, इसका मैं विस्तृत ब्योरा लिखे देता हूं।"

ऊर्मीने जवाब दिया—"मैं ठीक उसीके अनुसार चलूंगी।"

"लेकिन मैं तुम्हारी आलमारीकी इन किताबोंको अपने घर ले जाकर बन्द करके रख जाना चाहता हूं।"

"ले जाइये।"—कहकर ऊर्मीने चाभी उसके हाथमें सौंप दी। सितारपर एक बार नीरदकी नजर पड़ी। पर दुबिधामें पड़कर वह रुक गया।

अन्तमें महज कर्तव्यके लिहाजसे नीरदको कहना ही पड़ा—"मुझे सिर्फ एक बातका डर है, शशांक बाबूके यहाँ फिर अगर बार-बार तुम्हारा जाना-आना होता रहा, तो जरूर तुम्हारी कर्तव्य-निष्ठा शिथिल हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं। इससे तुम यह न समझ लेना कि मैं शशांक बाबूकी बुराई कर रहा हूं। वे बहुत ही अच्छे आदमी हैं। व्यवसायके क्षेत्रमें ऐसा उत्साह और ऐसी बुद्धि बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है। उनमें सिर्फ एक ही दोष है, वे किसी आदर्शको ही नहीं मानते। मैं तुमसे सच कहता हूं, उनके विषयमें अकसर मुझे डर लगा रहता है।"

इसके बाद फिर तो शशांकके और-भी अनेक दोषोंका जिक्र छिड़ गया, और उसका नतीजा यह हुआ कि नीरदसे अपने मनकी एक खास दुश्चिन्ताको जाहिर किये बिना न रहा गया; उसने कहा, 'जो-सब दोष आज दबे-ढके पड़े हैं वे उमरके साथ-साथ एक-एक करके प्रबलरूपमें जाहिर होते रहेंगे।' लेकिन फिर भी इस बातको वह मुक्तकण्ठसे मंजूर करता है कि वे आदमी बहुत अच्छे हैं, इसमें शक नहीं। मगर साथ-साथ वह यह भी कहना चाहता है कि उनकी संगतसे, उस घरकी आब-हवासे अपनेको

बचाये रखना ऊर्मीके लिए अत्यन्त आवश्यक है। ऊर्मीका मन अगर उनलोगोंके मनकी सतहमें उतर गया तो उससे उसका अधःपतन ही होगा।

ऊर्मीने कहा—"आप क्यों इतने परेशान हो रहे हैं ?"

"क्यों हो रहा हूँ सुनोगी ? नाराज तो न होगी ?"

"सच बात सुननेकी शक्ति आपसे ही पाई है मैंने। मैं जानती हूं कि यह आसान काम नहीं, फिर भी बरदाश्त कर सकती हूं।"

"तो कहता हूं, सुनो। तुम्हारे स्वभावके साथ शशांक बाबूके स्वभावमें एक जबरदस्त मेल है, इस बातका मैंने खूब अध्ययन किया है। उनका मन बिलकुल हलका है। और वही तुम्हें अच्छा लगता है, ठीक है कि नहीं बताओ ?"

ऊर्मी सोचने लगी, 'यह सर्वज्ञ है क्या ? मनकी बारीकसे बारीक बातको चटसे समझ जाता है!' निस्सन्देह उसके 'जीजाजी' उसे बहुत अच्छे लगते हैं। इसकी खास वजह यह कि शशांक 'हाः हाः' करके हँस सकता है, ऊधम और हँसी-मजाक करना आता है उसे। और इस बातको भी वह सही-सही जानता है कि कौनसा फूल और किस रंगकी साड़ी ऊर्मीको पसन्द है।

ऊर्मीने कहा—"हाँ, मुझे वे अच्छे लगते हैं, यह बात सच है।"

नीरदने कहा—"शर्मिला-जीजीका प्रेम स्निग्ध है, गम्भीर है; उनकी सेवा एक तरहका पुण्य-कार्य है; वे कर्तव्यसे कभी छुट्टी नहीं लेतीं। उन्हींके प्रभावसे शशांक बाबूने एकाग्र मनसे काम

करना सीखा है। पर जिस दिन तुम भवानीपुर जाती हो उस दिन मानो उनका नकली चेहरा उतर जाता है, तुमसे छेड़छाड़ हँसी-ठठोली करनेमें वे यहाँ तक उतर आते हैं कि कभी जूड़ा खोलकर बाल बखेर देते हैं तो कभी पढ़नेकी किताब छीनकर आलमारीके ऊपर फेंक देते हैं। टेनिस खेलनेका उनका शौक अचानक ऐसा प्रबल हो उठता है कि जरूरीसे जरूरी काम छोड़कर तुम्हारे साथ खेलने चल देते हैं।"

ऊर्मीको मन-ही-मन मानना ही पड़ा कि जीजाजी इतना ऊधम करते हैं तभी तो वे उसे अच्छे लगते हैं। उसका अपना बचपन उनके पास जाते ही लहरें लेने लगता है। वह भी उनपर कम जुल्म नहीं करती। उसकी जीजी उन दोनोंका ऊधम देखकर सिर्फ स्निग्ध हँसी हँस देती हैं। कभी-कभी मुलायम ढंगसे तिरस्कार भी करती हैं; पर वह असलमें तिरस्कार नहीं, उसका बहाना मात्र होता है।

नीरदने अन्तमें उपसंहारके तौरपर कहा—"जहाँ तुम्हारे अपने स्वभावको छूटपट्टी न मिले ऐसी जगह तुम्हें रहना चाहिए। मैं पास रहता तो कोई चिन्ता नहीं थी, क्योंकि मेरा स्वभाव तुमसे बिलकुल उलटा है। तुम्हारा मन रखनेके लिए तुम्हारे मनको ही मिट्टी कर देना यह काम मुझसे हरगिज नहीं हो सकता।"

ऊर्मीने सिर झुकाये हुए कहा—"आपकी बात मैं हरदम याद रखूँगी।"

नीरदने कहा—"मैं कुछ किताबें तुम्हारे लिए रखे जाता हूं। उनके जिन-जिन चैप्टरोंमें मैंने निशान लगा दिये हैं उन्हें खास

तौरसे पढ़ना और मनन करना, आगे चलकर बहुत काम देगा।"

ऊर्मीके लिए इस सहायताकी जरूरत थी। क्योंकि इधर कुछ दिनोंसे उसके मनमें अकसर सन्देह उठा करता है कि शायद शुरू-शुरूके उत्साहमें आकर वह गलती कर बैठी है। शायद डाक्टरी उसके स्वभावके खिलाफ पड़ेगी।

नीरदकी लाई हुई निशान-शुदा किताबें उसके मनके लिए कड़े बन्धनका काम देंगी, उसके मनकी नैयाको बहावके खिलाफ खींचकर वे उसे ठीकसे पार लगा देंगी।

नीरद विलायत चला गया। ऊर्मिमालाने अपने ऊपर और भी कठोर जुल्म करना शुरू कर दिया। ठीक वक्तपर कॉलेज जाती है, और बाकी बचे समयमें अपनेको बिलकुल जनानखानेमें बन्द कर रखती है। दिन-भर कालेजमें पढ़ाई-लिखाई करनेके बाद शामको घर लौटकर उसका थका-हुआ मन छुट्टी पानेके लिए जितना ही व्याकुल हो उठता उतना ही वह अपनेको अध्ययनकी जंजीरोंसे जकड़कर कैद कर रखना चाहती। पढ़ना आगे नहीं बढ़ता, एक ही पन्नेपर नजर और मन बार-बार व्यर्थ घूमता फिरता रहता, फिर भी हार नहीं मानना चाहती। नीरद यहाँ मौजूद नहीं, और इसीसे उसकी दूरवर्ती इच्छा-शक्ति मानो उसपर जोरोंसे काम करने लगी।

ऊर्मीके मनमें अपने ऊपर सबसे बढ़कर धिक्कारका भाव तब पैदा होता है जब काम करते-करते पहलेके दिनोंकी याद बार-बार उसके मनमें घूम-फिरकर झाँकने लगती है। युवकोंके दलमें उसके

भक्त बहुत थे। उन दिनों किसीकी उसने उपेक्षा की है तो किसीके प्रति उसका झुकाव भी था। उसका प्रेम तब पूरा पनपा नहीं था; तब तो सिर्फ प्यार करनेकी इच्छा ही उसके मनमें वसन्तकी मन्द-मन्द बयारकी तरह घूमा-फिरा करती थी। इसीसे तब वह मन-ही-मन गुनगुनाकर गीत गाया करती थी। अपनी पसन्दकी कविताएँ कापीमें लिख रखती; और मन जब बहुत ही उतावला हो उठता तो सितार बजाने लगती। आजकल, एक-एक दिन ऐसा हो जाता कि शामको जब वह कोई किताब खोलकर पढ़ने बैठती तो अचानक चौंककर देखती कि उसके मनके अन्दर ऐसे किसी दिनकी ऐसे किसी आदमीकी तसवीर घूम रही है जिस दिनको जिस आदमीको पहले कभी भी उसने कोई स्थान नहीं दिया; यहाँ तक कि उस आदमीके लगातार आग्रहने उस दिन उसमें नफरत पैदा कर दी थी। आज शायद उसका वह आग्रह ही इसके भीतरकी अतृप्त वेदनाको छू-छू जाता है, तितलीके क्षणिक और हलके पर फूलको जैसे वसन्तका स्पर्श दे जाते हैं।

इन सब विचारोंको वह जितनी तेजीके साथ मनसे दूर कर देना चाहती है, उतनी ही तेजीसे वे लौटकर उसके मनमें चक्कर लगाते रहते हैं। अपने डेस्कपर उसने नीरदकी एक तसवीर रख छोड़ी है। उसकी तरफ वह एकटक देखती रहती है। उसके चेहरेपर बुद्धिकी दीप्ति है, पर आग्रहका चिह्न नहीं। उसे वह अपने पास बुलाता ही नहीं तो उसका मन जवाब दे किसे? मन ही मन वह बराबर जपा करती है, कैसी प्रतिभा है, कैसी तपस्या

है, कैसा निर्मल चरित्र है, कैसा अनसोचा अचिन्त्य सौभाग्य है !

एक विषयमें नीरदकी जीत हुई है, यह कह देना भी जरूरी है। नीरदके साथ ऊर्मीका सम्बन्ध तय हो जानेपर शशांक तथा और भी दस-बीस सन्दिग्ध-चित्त लोग व्यङ्गकी हँसी हँसे थे। कहते थे—"राजाराम बाबू सीधे-सादे आदमी ठहरे, समझ बैठे हैं नीरद आदर्शवादी युवक है। उसका आदर्शवाद ऊर्मीके रुपयोंकी थैलीमें छुपा-छुपा अण्डे दे रहा है, इस बातको क्या लम्बे-लम्बे साधु-वाक्योंसे ढका जा सकता है! अपनेको सक्रिफाइस (त्याग) जरूर कर रहा है, पर जिस देवताके लिए उसका वह त्याग है उसका मन्दिर है इम्पीरियल बैङ्कमें। हमलोग सीधे तरीकेसे ससुरको जाकर कहते हैं, रुपये चाहिए, रुपये उनके बट्टेखाते नहीं जायेंगे, उन्हींकी लड़कीकी सेवामें खर्च होंगे। नीरद ठहरा महान पुरुष, कहता है, महान उद्देश्यके खातिर ही ब्याह करेगा। उसके बाद उस उद्देश्यका अनुवाद किया करेगा ससुरके चेकोंपर।"

नीरद जानता था कि ऐसी चर्चा होना अनिवार्य है। उसने ऊर्मीसे कहा—"मेरे ब्याह करनेमें एक शर्त रहेगी; तुम्हारे रुपयोंमेंसे मैं एक पैसा भी न छुऊँगा, अपनी कमाई ही मेरा एकमात्र अवलम्बन रहेगा।" ससुरने खुद उसे यूरोप भेजनेका प्रस्ताव किया था; पर वह किसी भी तरह राजी नहीं हुआ। इसके लिए उसे बहुत दिनों तक विलायत जानेसे रुकना भी पड़ा। राजाराम बाबूसे उसने कहा था—"अस्पतालके लिए आप जितना रुपया देना चाहें सब अपनी लड़कीके नामसे दीजियेगा। मैं

जब उस अस्पतालका भार सम्हालूँगा तब उसके लिए मैं कुछ भी नहीं लूँगा, अवैतनिक सेवा करूंगा। मैं डाक्टर हूं, जीविकाके लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

नीरदकी इस अत्यधिक अनासक्तिको देखकर राजारामकी भक्ति उसपर और भी बढ़ गई; और ऊर्मीने भी अत्यन्त गर्व अनुभव किया। और उस गर्वका उचित कारण मौजूद रहनेके कारण ही शर्मिलाका मन नीरदके बिलकुल खिलाफ हो गया। उसने कहा—"देख लूंगी मैं, कब तक टिकती है अनासक्ति!" इसके बाद, फिर तो ऐसा हो गया कि नीरद जब अपनी आदतके माफिक गम्भीरताके साथ बात करने लगता, तो शर्मिला अचानक बीचमेंसे उठकर गरदन टेढ़ी करके कमरेसे बाहर चली जाती। कुछ दूर तक उसके पैरोंकी आहट सुनाई पड़ती रहती। ऊर्मीके लिहाजसे मुँहसे कुछ कहती नहीं थी, पर उसके न कहनेकी व्यञ्जना काफी तेजोत्तप्त होती।

शुरू-शुरूमें नीरद हर डाकमें लम्बी-लम्बी उपदेशपूर्ण चिट्ठी छोड़ता रहा। कुछ दिन बाद अचानक एक टेलीग्राम आया, उससे लोग चौंक पड़े। मोटी रकमकी माँग है, अध्ययनके लिए रुपयोंकी सख्त जरूरत है।

नीरदकी तरफसे ऊर्मीके रुपयोंमें हाथ न लगानेकी जो प्रतिज्ञा थी, उसका गौरव ही अब तक ऊर्मीके जीवनका मूलधन बना हुआ था। आज उसपर गहरी चोट पहुंची; किन्तु साथ ही ऊर्मीको उससे जरा सान्त्वना भी मिली। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे और

नीरदकी गैरमौजूदगी लम्बी होने लगी, त्यों-त्यों ऊर्मीका पहलेका स्वभाव कर्तव्यकी चहारदीवारीसे निकल भागनेकी राह ढूंढ़ने लगा, कहीं जरा सँध या छेद मिल जाय तो वह निकल भागे। अपनेको वह नाना छलोंसे धोखा भी देती और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करती। इस तरहकी आत्मग्लानिके समयमें नीरदको आर्थिक सहायता भेजकर उसे कुछ सान्त्वना मिलती और मनमें कुछ सन्तोष भी आता।

ऊर्मीने नीरदका तार मैनेजरके हाथमें देते हुए संकोचके साथ कहा—"काका सा'ब, रुपये भेज दीजियेगा—"

मैनेजरने कहा—"दालमें कुछ काला मालूम होता है। अब तक तो हमलोग यही समझते थे कि हमारा रुपया उनके लिए अस्पृश्य श्रेणीका है।"

मैनेजरको नीरद पसन्द नहीं था।

ऊर्मीने कहा—"लेकिन विलायतमें—" बात पूरी न कह सकी।

काकाने कहा—"मैं समझता हूं, इस देशका स्वभाव विदेशकी मिट्टीमें जाकर बदल भी जाता है; लेकिन सवाल तो यह है कि हमलोग उनसे ताल मिलाकर चल भी सकेंगे?"

ऊर्मीने कहा—"रुपये नहीं पहुंचे तो परेशानीमें पड़ सकते हैं।"

"ठीक है, भेजे देता हूं। तुम ज्यादा चिन्ता न करो, बेटी। लेकिन इतना मैं कहे देता हूं, यह जो शुरू हुआ है, इसका कोई अन्त नहीं।"

'अन्त नहीं' इसका सबूत कुछ ही दिन बाद मिल गया। पहलेसे भी बड़ी रकमकी माँग आने लगी। अबकी जरूरत

पड़ी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए। मैनेजरने गम्भीर मुंह बनाकर कहा—"शशांक बाबूसे सलाह ले लेना अच्छा होगा।"

ऊर्मी घबड़ाकर कह उठी—"आप और चाहे जो भी कीजिये, पर जीजीके कानों तक यह बात हरगिज नहीं पहुंचनी चाहिए।"

"अकेले अपने ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेवारी लेना मैं ठीक नहीं समझता।"

"आखिर एक दिन तो रुपया सब उन्हींके हाथ पड़ेगा।"

"हाथ पड़नेसे पहले यह देखना पड़ेगा कि रुपया पानीमें न जा पड़े।"

"लेकिन उनके स्वास्थ्यका भी तो खयाल रखना है।"

"अस्वास्थ्य नाना प्रकारका होता है। यह ठीक किस प्रकारका है, मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा। यहीं चले आयें तो शायद हवाके परिवर्तनसे ही सुधार हो जाय। मेरी समझसे वापस बुलानेका इन्तजाम कर दिया जाय तो ठीक रहेगा।"

वापस बुलानेकी बातसे ऊर्मी इतनी ज्यादा विचलित हो उठी कि सोचने लगी, शायद उसीकी वजहसे नीरदके उच्च-आदर्शको बाधा पहुंच रही है।

काकाने कहा—"इस मरतबा तो रुपया भेजे देता हूं, पर मुझे तो लगता है, इससे डाक्टर सा'बका स्वास्थ्य और भी ज्यादा बिगड़ जायगा।"

राधागोविन्द एक नातेसे ऊर्मीके काका लगते हैं। 'काका' की बातका इशारा उसके चुभ गया। सन्देह होने लगा मनमें।

सोचने लगी, 'जीजीसे शायद कहना ही पड़ेगा।' और फिर, अपनेको भीतरसे धक्का दे-देकर पूछने लगी, 'जितना होना चाहिए उतना दुःख क्यों नहीं हो रहा मुझे ?'

ठीक इसी समय शर्मिलाकी बीमारीके बारेमें उसका मन चिन्तित हो उठा। अपने भाईकी बात याद करके उसे डर लगने लगा। तरह-तरहके डाक्टरोंको लगा दिया गया उसकी बीमारीकी छान-बीनके लिए। शर्मिलाने थकावटकी हँसी हँसकर कहा—"सी०आई०डी०ओंके हाथसे असल अपराधी तो निकल भागेगा और उसका नतीजा भुगतना पड़ेगा निरपराधको।"

शशाङ्कने चिन्तित चेहरेसे कहा—"देहकी खानातलाशी शास्त्रानुसार ही चलने दो, नतीजा अच्छा ही निकलेगा, भुगतनेकी ऐसी कोई खास बात नहीं।"

और मजा यह है कि ठीक इसी समय शशाङ्कके हाथमें दो बड़े-बड़े काम आ पड़े। एक था गंगाके किनारे जूट-मिलमें, और दूसरा टालीगंजकी तरफ; मीरपुरके जमींदारोंके काफी लम्बे-चौड़े बगीचेमें आलीशान मकान बनेगा। जूट-मिलकी कुली-बस्तीका काम खतम कर देनेकी मियाद थी तीन महीनेकी। कई-एक ट्यूब-वेल बिठाने थे कई जगह। शशांकको जरा भी फुरसत नहीं थी। शर्मिलाकी बीमारीकी वजहसे उसे घरमें फँसा रहना पड़ता, पर उसका मन रहता कामकी चिन्तामें।

जबसे ब्याह हुआ है, तबसे आज तक शर्मिलाको कभी ऐसी बीमारीने नहीं घेरा, जिससे शशांकको कोई खास चिन्ता करनी पड़ी हो। इसीसे अबकी जो बीमारी हुई उसके उद्वेगसे

शशांकका मन बच्चोंकी तरह छटपटाने लगा। कामका हरजा करके घूम-फिरकर बार-बार वह स्त्रीके बिस्तरके पास जाकर हताश-सा बैठ जाता। शर्मिलाके माथेपर हाथ फेर देता; और पूछता—"कैसी तबीयत है?" शर्मिला उसी वक्त जवाब देती—"तुम झूठमूठको क्यों फिकर करते हो, मेरी तबीयत ठीक है।" यह विश्वास करनेकी बात नहीं, पर विश्वास करनेकी तीव्र इच्छा होनेसे शशांक उसपर चटसे विश्वास करके छुट्टी पा जाता।

शशांकने कहा—"ढेनकानलके राजाका एक बड़ा-भारी काम मेरे हाथ आया है। प्लैनके बारेमें दीवानके साथ बात करने जाना है। जितनी जल्दी हो सकेगा, मैं वापस आ रहा हूं; डाक्टर आनेके पहले ही आ जाऊँगा।"

शर्मिलाने उलाहनेके तौरपर कहा—"तुम्हें मेरे गलेकी सौगंद है, जल्दबाजी करके कहीं हाथसे काम न खो देना। मैं समझ रही हूं, तुम्हें ढेनकानल भी जाना पड़ेगा। जरूर जाना, न जाओगे तो मेरी उलटी तबीयत खराब करोगे तुम। मेरी देख-भालके लिए काफी आदमी हैं।"

शशांकके मनमें बड़ी-भारी दौलत इकट्ठी करनेकी हवस दिन-रात चक्कर काटा करती है। उसका खिंचाव धन-दौलतकी तरफ उतना नहीं जितना कि बड़े होनेकी तरफ है। बड़ी-कोई चीज गढ़ डालनेमें ही पुरुषका पुरुषार्थ है। दौलत जैसी चीजको नाचीज समझकर नफरतकी निगाहसे तभी देखा जा सकता है जब उससे सिर्फ किसी कदर दिन काटे जाते हैं। पर जब उसकी चोटीको पहाड़की चोटीकी तरह ऊँचा कर दिया जाता है

तब आम लोग उसकी इज्जत करने लगते हैं। उससे अपना कोई उपकार या फायदा न होनेसे उसके बड़प्पनको देखकर लोग और भी ज्यादा खुश होते हैं; उसकी तारीफ करनेमें ही साधारण लोगोंके चित्तको स्फूर्ति मिलती है! शर्मिलाके सिरहानेके पास बैठे हुए शशांकके मनमें जब कि जोरोंका उद्वेग चलता रहता, ठीक उन्हीं क्षणोंमें वह सोचे बगैर नहीं रह सकता कि उसके काम-काजकी सृष्टिमें अनिष्टकी आशंका कहाँ पनप रही है। शर्मिला जानती है कि शशांककी यह चिन्ता कंजूसकी दुश्चिन्ता नहीं है, बल्कि अपनी हालतकी नीचेकी मंजिलसे जयस्तम्भकी नींव डालकर उसे ऊपर तक चुनते चले जानेके पौरुषकी चिन्ता है। शशांकके इस गौरवसे शर्मिला अपनेको गौरवान्वित समझती है। इसीसे, उसके लिए आरामदे होनेपर भी, वह यह नहीं चाहती कि बीमारीके वक्त पति उसकी तीमारदारीमें लगकर काम-काजमें ढील करे। यही वजह है कि शशांकको वह बार-बार कार्यकी तरफ ध्यान देनेको कहती रहती है।

इधर शर्मिलाको अपने कर्तव्यकी इतनी चिन्ता है कि जिसकी हद नहीं। वह खुद तो पड़ी है बिस्तरपर, नौकर-चाकर क्या करते होंगे कौन जाने? इसमें उसे कोई सन्देह नहीं कि रसोईमें घी बरबाद जा रहा होगा, नहान-घरमें ठीक वक्तपर गरम पानी हरगिज न रखा गया होगा, बिस्तरपर धुली हुई चादर बिछाने और तकियोंकी खोलियाँ बदलनेका किसे होश है? भंगीसे नाली साफ करानेकी किसको फिकर है? धोबीके यहाँसे जो

कपड़े आये होंगे, उसमें कितने रह गये, कितने बदल गये, कोई ठीक नहीं। शर्मिलासे रहा नहीं जाता, लुक-छिपकर वह उठके चल देती है घर सम्हालने। नतीजा यह होता है कि दर्द और बुखार बढ़ जाता है; डाक्टरकी समझमें नहीं आता कि क्या हुआ, कैसे हुआ।

आखिर ऊर्मिमालाकी पुकार हुई। शर्मिलाने उसे घर बुलाकर कहा—"कुछ दिनके लिए तू कालेज छोड़कर मेरे घरको बचा बहन। नहीं तो मैं निश्चिन्त होकर मर भी नहीं सकती।"

जो पूरा इतिहास जानते हैं, यहाँ वे जरूर जरा मुसकरा देंगे, और कहेंगे, 'समझ लिया।' समझनेके लिए ज्यादा दिमागकी जरूरत नहीं। जो होनहार होता है वही होता है; और वही काफी है। और ऐसा समझ लेनेका भी कोई कारण नहीं कि तकदीरका खेल चलता रहेगा ताशकी पत्तियोंकी तरह छिपा-छिपाकर, शर्मिलाकी आँखोंमें धूल झोंककर।

ऊर्मीके उत्साहका ठिकाना न रहा जब वह यह अनुभव करने लगी कि 'जीजीकी सेवा करने जा रही हूं।' वह सोचने लगी, 'इस कर्तव्यके सामने और सब कामको हटाकर एक तरफ कर देना चाहिए। कोई चारा नहीं। इसके सिवा, तीमारदारीका काम ठहरा, उसके भावी जीवनके चिकित्सा-कार्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध है इसका, बल्कि यों कहना चाहिए कि यह उसीका एक अंग है।'

बड़े आडम्बरके साथ उसने एक चमड़ेकी जिल्दकी डाक्टरी नोटबुक ली। उसमें बीमारीका रोजाना उतार-चढ़ाव दर्ज किया

करेगी। इलाज करनेवाले डाक्टर उसे अनभिज्ञ समझकर कहीं उसकी अवज्ञा न करने लगें, इस खयालसे तय किया कि जीजीकी बीमारीके बारेमें जहाँ जो कुछ साहित्य मिले पढ़ लेना चाहिए। उसकी एम० एस-सी० परीक्षाका विषय है शरीरतत्त्व, लिहाजा रोगतत्त्वकी पारिभाषिक व्याख्या समझनेमें उसे परेशानी न होगी। मतलब यह कि जीजीकी तीमारदारीमें पड़कर वह अपने कर्तव्यसूत्रसे विच्छिन्न नहीं होगी बल्कि और-भी ज्यादा एकाग्र चित्त और कठिन प्रयत्नसे उसका अनुसरण ही करेगी यह समझकर वह अपनी पढ़नेकी किताबें और नोटबुक वगैरह बगमें भरकर सीधी भवानीपुरके मकानमें जा दाखिल हुई।

पर, जीजीकी बीमारीको लेकर रोगतत्त्वके सम्बन्धमें मोटी-मोटी किताबें उठाने-धरनेका ऊर्मीको मौका ही नहीं मिला। कारण, विशेषज्ञ डाक्टर अभी तक रोगका नाम तय नहीं कर पाये हैं।

ऊर्मीने सोचा, उसे शासनकर्ताका काम मिला है। लिहाजा उसने गम्भीर मुंह बनाकर जीजीसे कहा—"डाक्टरकी हिदायतका ठीक-ठीक अमल हो रहा है या नहीं, यह देखना मेरा काम है; अब तुम्हें मेरी बात सुननी होगी, पहलेसे कहे देती हूं।"

जीजी उसकी जिम्मेदारीकी तड़क-भड़क देखकर हँस दी, बोली—"अरे, तैंने इतना गम्भीर होना किस गुरुसे सीख लिया? नई दीक्षा है न, इसीसे इतना उत्साह है। मैंने तो इसलिए तुझे बुलाया है कि तू मेरी बात सुनेगी। तेरा अस्पताल तो अभी बना नहीं; मेरी घर-गृहस्थी बनी-बनाई तैयार है। फिलहाल

तू उसका चार्ज सम्हाल ले, तेरी जीजीको जरा छुट्टी मिल जाय।"

शर्मिलाने अपनी रोगशय्यासे उसे एक तरहसे जबरदस्ती ही हटा दिया।

आज जीजीके घरके राज्यमें प्रतिनिधिका पद उसीका है। वहाँ अराजकता छा रही है, जल्दसे जल्द उसे रोकना है। इस गृहस्थीके सर्वोच्च शिखरपर जो एकमात्र पुरुष विराज रहा है उसकी सेवामें जरा-सी भी कोई त्रुटि न होने पाये, इस महान उद्देश्यके लिए त्याग स्वीकार करना इस घरके छोटे-बड़े सभी अधिवासियोंका एकमात्र साधनाका विषय है। शर्मिलाके मनमें ऐसा एक संस्कार-सा ही बैठ गया है कि इस घरका मालिक अत्यन्त निरुपाय है और अपनी देहयात्राका निर्वाह करनेमें शोचनीय रूपसे अकर्मण्य है; और वह उसके मनसे किसी कदर निकलना ही नहीं चाहता। हँसी भी आती है और स्नेहसे भीगे हुए मनको तरस भी आता है जब देखती है कि चरुटकी आगसे कुड़तेकी बाँह जल रही है और हजरतको होश ही नहीं। सवेरे उठकर मुँह धोया और कमरेके कोनेमें लगा हुआ नल खुला छोड़कर इंजीनियर साहब अपने कामसे चल दिये। वापस आकर देखते हैं तो घर-भरमें पानी-ही-पानी भरा है, कारपेट भीगकर मटियामेट हो गया! शर्मिलाने इस जगह नल बिठानेकी शुरूसे ही मनाही की थी। उसे मालूम था कि इस महापुरुषके हाथसे रोज बिस्तर और कारपेटके पास उस कोनेमें जल और स्थलमें ऐसा गठबन्धन हुआ करेगा जो देखते ही बनेगा।

लेकिन आप बड़े-भारी इंजीनियर ठहरे, वैज्ञानिक सहूलियतकी दुहाई देकर जहाँ तक बस चलता है नाना असुविधाओंकी सृष्टि करनेमें पीछे कदम नहीं रखते। खामखा क्या तो धुन सवार हुई, एक दिन आप अपने खास निजी ऑरिजिनल प्लैनसे एक 'स्टोव' बना बैठे। उसमें इधर दरवाजा, उधर दरवाजा, इधर एक चोंगा तो उधर और कुछ; एक तरफ आगका अपव्ययहीन उद्दीपन होता है तो दूसरी तरफ ढालू रास्तेसे राखका सम्पूर्णरूपसे अधःपतन। उसमें सेकनेकी, तलनेकी, राँधने-उबालनेकी, पानी गरम करनेकी, मतलब यह कि सब तरहकी व्यवस्था थी; और सबके लिए न्यारे-न्यारे खाने और गुफाएँ मौजूद थीं। उसकी महिमाको अत्यन्त उत्साह और अच्छी भाषा-शैलीके साथ सह लेना पड़ा था; कामकी चीजके हिसाबसे नहीं, बल्कि शान्ति और सद्भाव बनाये रखनेके लिए। अधेड़ उमरके बच्चोंका खेल ही ऐसा होता है, क्या किया जाय। कोई रोकता है तो अनर्थकी सृष्टि होती है, और ऐसे दो ही दिनमें भूल-भाल जायेंगे। हमेशाकी व्यवस्थामें वैज्ञानिक पुरुषोंका मन नहीं लगता, उद्भट कुछ न कुछ करनेको जी चाहता है; और स्त्रियोंकी जिम्मेवारी यह है कि मुंहसे तो उनकी हाँमें हाँ मिला देना और कामके वक्त चलना अपने मतानुसार। हर तरह शर्मिला पति-पालनकी जिम्मेदारी अब तक बराबर बड़े आनन्दसे निभाती आई है।

इतने दिन तो बीत गये। अपनेको अलग करके शर्मिला शशांकके जगतकी कल्पना ही नहीं कर सकती। आज उसे

डर लग रहा है कि बीचमें जमदूत आकर कहीं जगत् और जगद्धात्रीमें विच्छेद न करा दे। बल्कि उसे तो यहाँ तक आशंका है कि मरनेके बाद भी शशांककी दैहिक लापरवाही उसकी विदेही आत्माको अशान्त बनाये रखेगी। भाग्यसे ऊर्मी थी। वह उस जैसी शान्त नहीं। फिर भी उसकी तरफसे काम तो चलाये ले जा रही है। वह काम भी तो औरतोंके हाथका काम है। स्त्रियोंके स्निग्ध हाथोंका स्पर्श मौजूद न हो तो मर्दोंकी रोजमर्राकी जिन्दगी और उसकी जरूरतोंमें रस ही न रहे; सब-का-सब नीरस और श्रीहीन हो जाय। इसीसे, ऊर्मी जब अपने सुन्दर हाथोंसे सेबके छिलके उतारकर उन्हें ठीक ढंगसे बनार-बनारकर रखती है, नारंगीकी फाँकें नुकाकर उन्हें सफेद पत्थरके थालमें सजाती है और बेदाना छीलकर उसके एक-एक दानेको जतनसे इकट्ठा करके चाँदीके कटोरेमें रखती है, तब शर्मिला अपनी बहनके अन्दर मानो अपनेको ही अनुभव करने लगती है। बिस्तरपर पड़ी-पड़ी हर वक्त वह कामकी फरमाइश किया करती—

'उनका सिगरेट-केस तो भर दे ऊर्मी।'

'देख तो सही, मैला रूमाल पड़ा होगा जेबमें, उन्हें कहाँ खयाल रहता है बदलनेका!'

'जरा जूतोंको तो देख, सीमेण्ट-बालू जमकर पक्की हो गई होगी। नौकरसे कहकर साफ करवा लें, इतना भी होश नहीं।'

'तकियोंकी खोली तो बदल दे बहन।'

'फेंक उन फटे कागजोंको, टोकनीमें डाल दे।'

'एक बार आफिस-वाला कमरा तो देख आ ऊर्मी, मैं कहती हूं न, कैश-बक्सकी चाभी टेबिलपर रखी छोड़ गये होंगे।'

'फूलगोभीके पौधे लगानेका वक्त आ गया, खयाल रखना।'

'मालीसे कह देना, गुलाबके पौधोंकी डालियाँ छाँट दे।'

'जरा देखो तो सही, कोटके पीछे चूना लगा हुआ है, इतनी जल्दी किस बातकी है, जरा ठहरो,—ऊर्मी, जरा बुरुश तो कर दे बहन, पीठपर।'

ऊर्मी किताब पढ़नेवाली लड़की है, काम करनेवाली नहीं; फिर भी बड़ा आनन्द आता है उसे। जिन कड़े नियमोंकी चहारदीवारीके अन्दर वह थी, उसमेंसे निकलनेके बाद ये सब काम उसे अनियम-से ही मालूम होते हैं। इस घरकी कार्यधाराके भीतर-ही-भीतर जो उद्वेग चल रहा है, साधना चल रही है, वह उसके मनमें नहीं है; उस चिन्ताका सूत्र है उसकी जीजीके मनमें। इसीलिए उसके लिए ये सब काम खेलके सिवा और कुछ नहीं; यह एक तरहकी छुट्टी है, उद्देश-शून्य उद्योग। वह अब तक जहाँ थी उससे यह बिलकुल अलग दुनिया है; यहाँ उसके सामने कोई लक्ष्य उंगली दिखाकर 'खबरदार' नहीं कहता, और मजा यह कि दिन यहाँके काम-काजसे भरे-पूरे हैं, और काममें वैचित्र्य है। गलती हो, त्रुटि हो, तो उसके लिए कड़ी जवाबदेही नहीं। जीजी थोड़ा-बहुत कुछ कहती भी है, तो शशांक उसे हँसके उड़ा देता है; जैसे ऊर्मीकी गलतीमें कोई खास रस हो। वास्तवमें आजकल इनकी घर-गृहस्थीसे दायित्वका गाम्भीर्य

जाता रहा है, ऐसी एक ढीली अवस्था आ गई है जो भूल-चूककी कुछ परवाह ही नहीं करती; और इसीमें शशांकको आराम और खुशी हासिल होती है। उसे ऐसा लगता है जैसे पिकनिक चल रही हो। और खासकर ऊर्मीको जो किसी बातकी फिकर नहीं, रंज नहीं, शर्म नहीं, सभी बातोंमें उत्साहका अन्त नहीं, उससे शशांकके अपने मनसे भी काम-धन्धेका भारी बोझा-सा उतर जाता है, सारी थकावट दूर हो जाती है; और यह उसके लिए बड़ा-भारी लाभ है। काम पूरा होते ही, और कभी-कभी उसे अधूरा ही छोड़कर, शशांकका मन घर आनेके लिए व्याकुल हो उठता है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ऊर्मी काम-काजमें होशियार नहीं है। फिर भी, जरा गौरसे देखा जाय तो एक बात खास तौरसे नजर आती है कि कामसे न सही, खुद अपनेको चारों तरफ घुमा-फिराकर उसने इस घरको बहुत दिनोंकी एक जबरदस्त कमीको पूरा कर दिया है; वह कमी ठीक कौनसी है, सो निर्दिष्ट भाषामें नहीं कहा जा सकता। इसीसे जब शशांक घर आता है तब यहाँकी हवामें वह एक तरहकी खास छुट्टीकी हिलोरें अनुभव करने लगता है। उस छुट्टीका आराम सिर्फ घरकी सेवामें नहीं मिलता, सिर्फ फुरसत ही से नहीं मिलता, उसका एक खास रसमय स्वरूप है। सचमुच ऊर्मीकी अपनी छुट्टीकी खुशीने यहाँके सारे सूनेपनको भर दिया है, दिन-रातको चंचल कर रखा है। हर वक्तका वह चांचल्य काम-काजसे थके हुए शशांकके खूनमें आनन्दकी हिलोरें पैदा करता रहता है।

दूसरी तरफ शशांक ऊर्मीको पाकर प्रसन्न है, इसकी प्रत्यक्ष उपलब्धिसे ऊर्मीको भी आनन्द मिलता है। अब तक यही सुख ऊर्मीको नहीं मिला। वह जो अपने अस्तित्व-मात्रसे किसीको खुश करती है यह तथ्य बहुत दिनों तक उससे छिपा रहा; और इसीसे उसके यथार्थ गौरवकी मानहानि हो रही थी।

शशांकका खाना-पहनना उसकी आदतके माफिक हो रहा है या नहीं, ठीक वक्तपर ठीक चीज उसे मिल जाया करती है या नहीं, ये सब बातें इस घरके मालिककी दृष्टिमें आज गौण हो गई हैं; वैसे ही बिना-कारण वह प्रसन्न है। शर्मिलासे वह कहता है—"तुम जरा-जरा-सी बातपर इतनी घबराने क्यों लगती हो? आदतमें जरा हेर-फेर हो जानेसे कोई तकलीफ थोड़े ही होती है, बल्कि अच्छा ही लगता है।"

शशांकका मन इस समय ज्वार-भाटेकी बीचकी नदीके समान हो रहा था। कामकी रफ्तार जरा-कुछ थम-सी गई थी। अब उसके मुँहसे पहलेकी तरह ऐसा सुननेमें नहीं आता कि 'जरा-सी देर हो जानेसे हजारोंका नुकसान हो जायगा', 'जल्दी करो, नहीं तो आज भी सब काम चौपट हो जायगा' इत्यादि। ऐसी कोई बात मुँहसे निकलते ही ऊर्मी उसके गाम्भीर्यको उसी घड़ी चूर-चूर कर देती है, वह जोरोंसे हँस उठती है। शशांकके मुँहपर गाम्भीर्यका भाव देखते ही वह कहने लगती है—"आज तुम्हारा वह हौआ आया था क्या, हरी-पगड़ीवाला दलाल? ..ही डर दिखा गया है मालूम होता है।"

शशांक अचम्भेमें आकर कहता—"तुम उसे कैसे जान गई ?"

"मैं उसे अच्छी तरह जानती हूं। तुम उस दिन बाहर चले गये थे, वह अकेला बैठा रहा था बरंडेमें। मैंने ही उसे तरह-तरहकी बातोंमें फँसाकर बिठा रखा था। उसका देश शायद बीकानेर है, मशहरीमें आग लग जानेसे उसकी स्त्री जलके मर गई है, दूसरी शादीके फिराकमें है।"

"अब तो वह रोज ठीक ऐसे हिसाबसे आया करेगा जब कि मैं बाहर चला जाया करूँगा। जब तक दूसरी स्त्रीका पता नहीं लगता तब तक यहाँ उसका सपना खूब जमा करेगा!"

"तुम मुझे बता जाया करो, उससे कौन-सा काम निकालना है। उसके रंग-ढंगसे मालूम होता है, मैं काम निकाल सकूंगी।"

आजकल शशांकके मुनाफेके खातेमें निन्यानवेके ऊपर जो मोटी रकमें चालू हालतमें हैं, बीच-बीचमें अगर जरा कहीं रुक भी जाती हैं तो उससे चंचल हो उठनेकी कोई बात उसमें नहीं दिखाई देती। शामको रेडिओके पास बैठनेका उत्साह अब तक उसमें नहींके बराबर था; लेकिन आजकल ऊर्मी जब उसे रेडिओ सुनने खींच लाती है तो उसे वह तुच्छ नहीं मालूम होता, और न उसमें वह समयकी बरबादी ही समझता है। हवाई-जहाजका उड़ना देखनेके लिए एक दिन तड़के उठकर उसे दमदम तक दौड़ना पड़ा; और चाहे जो-भी हो, पर वैज्ञानिक कुतूहल उसका प्रधान आकर्षण हरगिज न था। न्यू-मारकेटमें सौदा खरीदने जाना उसकी जिन्दगीमें शायद यह पहली ही घटना थी, लेकिन गया और खुशी-खुशी गया।

इसके पहले कभी-कभी फल-फूल या शाक-सब्जी लानेका काम पड़ता तो शर्मिलाको खुद ही जाना पड़ता था। वह जानती है कि यह काम खास तौरसे उसीके महकमेका है। इसमें शशांक उसके साथ सहयोगिता करेगा इस बातका उसने कभी खयाल भी नहीं किया; और न उसकी ऐसी इच्छा ही थी। लेकिन ऊर्मी असलमें चीज खरीदने नहीं जाती, चीजें उलटने-पलटने जाती है। वह चीज उठाती है और दाम पूछकर रह जाती है। शशांक अगर खरीदना चाहता है तो वह उसके हाथसे रुपयोंका बैग छीनकर उसे अपने बैगमें कैद कर लेती है।

शशांकके कामकी व्यथाको ऊर्मी कतई नहीं समझती। कभी-कभी बाधा देनेमें वह बहुत ज्यादती भी कर जाती है; और तब शशांकसे फटकार भी खा जाती है। पर उसका नतीजा ऐसा दुखदायक होता है कि उसका दुःख दूर करनेमें शशांकको दूना समय देना पड़ता है। एक तरफ ऊर्मीकी आँखोंमें एकसाथ जोरोंसे आँसू उमड़नेकी सम्भावना होती है तो दूसरी तरफ अनिवार्य कामका तकाजा; इन दोनोंके बीच पड़कर अन्तमें उसे घरके चेम्बरमें ही सब कामसे फारिग होनेकी कोशिश करनी पड़ती है। पर तीसरे पहरके बाद फिर वहाँ रहना उसके लिए दुःसह हो जाता है। किसी कारणसे जिस दिन ज्यादा देर हो जाती उस दिन ऊर्मीका रूठना दुर्भेद्य मौनकी ओटमें ऐसा सख्त हो जाता कि उसे रुचाना मुश्किल हो जाता। ऊर्मीके उन रुके हुए आँसुओंके कुहरेमें छिपा हुआ अभिमान शशांकको भीतर-ही-भीतर आनन्द देता है। वह भले-आदमीकी तरह

कहता—"ऊर्मी, तुम्हें अपने न-बोलनेके सत्याग्रहकी रक्षा करनी ही चाहिए; पर दुहाई धर्मकी, तुमने न-खेलनेकी प्रतिज्ञा तो नहीं की थी !" इसके बाद टेनिस-बैट लेकर दोनों खेलमें जुट जाते। खेलमें शशांक जीतके बिलकुल नजदीक पहुंचनेके बाद जान-बूझकर हार जाता। और, मजा यह है कि नष्ट हुए समयके लिए फिर दूसरे दिन सवेरे उठकर पश्चात्ताप करता रहता।

किसी एक छुट्टीके दिन, दोपहरके बाद, शशांक जब दाहने हाथमें लाल पेन्सिल लेकर बायें हाथकी उंगलियोंसे बेमतलब बालोंको छेड़ता हुआ आफिसकी टेबिलपर बैठा दुःसाध्य कामपर झुक पड़ता तब ऊर्मी आकर कहती—"तुम्हारे उस दलालके साथ मैंने तय किया है, आज पारसनाथका मन्दिर देखने जाऊंगी। चलो मेरे साथ। तुम मेरे जीजाजी हो न, चलो।"

शशांक विनयके साथ कहता—"नहीं ऊर्मी, आज नहीं; इस वक्त उठके जाना मेरे लिए काल है।"

जरूरीसे जरूरी कामकी महत्तासे ऊर्मी जरा भी नहीं डरती। कहती—"अबला तरुणीको अरक्षित अवस्थामें हरी-पगड़ीधारीके हाथ सौंपनेमें तुम्हें जरा भी संकोच नहीं, यही है क्या तुम्हारी 'शिवलरी' ?"

अन्तमें ऊर्मीकी ज्यादतीसे तंग आकर शशांकको जाना पड़ता मोटर हाँककर। इस तरहकी ज्यादतीकी खबर लगते ही शर्मिला बहुत बिगड़ उठती। क्योंकि उसकी रायसे पुरुषोंकी साधनाकी जगह स्त्रियोंका अनधिकार-प्रवेश किसी भी हालतमें क्षम्य नहीं। ऊर्मीको वह बराबर बच्ची ही समझती आई है। आज भी वही

धारणा उसके मनमें ज्यों-की-त्यों मौजूद है। सो हुआ करे, इसके मानी यह नहीं कि आफिस कोई खेलकी जगह हो। इसलिए ऊर्मीको बुलाकर उसे वह काफी कड़ाईसे डाटती-फटकारती। उसके डाटने-फटकारनेका निश्चित फल भी हो सकता था, पर स्त्रीकी गुस्सेकी आवाज सुनकर शशांक खुद दरवाजेके बाहर आ खड़ा होता; और ऊर्मीको तसल्ली देकर आँखका इशारा करता रहता। ताशका पैक दिखाकर इशारा करता; उसका मतलब यह कि 'चली आओ न, आफिस-रूममें बैठकर तुम्हें 'पोकर' सिखाऊंगा।' उस वक्त खेलनेकी फुरसत कतई नहीं होती, एक-एक मिनट भारी मालूम होता, फिर भी उसे 'जीजी'की कड़ी डाट-फटकारसे बचानेके लिए वह अपना कीमती वक्त पानीकी तरह बहाता रहता। असलमें, शर्मिलाकी फटकारसे ऊर्मीके मनको उतनी ठेस नहीं पहुंचती जितनी कि खुद उसको पहुंचती। वह खुद खुशामद करके, यहाँ तक कि थोड़ी-बहुत डाट बताकर, अपने कामकी जगहसे हटा देना चाहता, पर शर्मिला इस विषयको लेकर उसे डाटे-फटकारे यह उससे नहीं सहा जाता।

शर्मिला शशांकको बुलाकर कहती—"तुम उसकी हरएक जिदको इस तरह बरदाश्त करोगे तो कैसे काम चलेगा? वक्त नहीं देखना, जरूरी कामको नहीं समझना, इससे तुम्हारा नुकसान जो होता है।"

शशांक कहता—"क्या हुआ इससे, अभी बच्ची है, यहाँ उसका कोई संगी-साथी नहीं, जरा हँसेगी-खेलेगी नहीं तो जीयेगी कैसे?"

यह तो हुआ उसका नाना प्रकारका बचपन। पर शशांक जब किसी मकानका नक्शा लेकर बैठता, तो वह कुरसी खींचकर उसके पास जा बैठती, कहती, 'समझा दो मुझे।' बड़ी आसानीसे समझ जाती, गणित-सम्बन्धी नियम उसे जटिल नहीं मालूम होते। शशांक बहुत खुश हो उठता और उसे 'प्रौब्लेम' (सवाल) देता, वह उसका जवाब लिख लाती। जूट-कम्पनीके स्टीम-लंचपर बैठकर शशांक कामकी तहकीकात करने जाता, वह जिद पकड़ बैठती, 'मैं भी चलूंगी।' सिर्फ जाती ही नहीं, बल्कि मापने-जोखनेके हिसाबपर बहस करती; शशांक पुलकित हो उठता। भरपूर कवित्वसे इसमें रस कहीं ज्यादा है। इसीसे, अब चेम्बरका काम अगर घर ले आता है तो उसके मनमें वाधा-विघ्नकी आशंका नहीं रहती। लाइन-खिंचे हुए हिसाबके खातेके काममें उसे एक साथी मिल जाता है; और साथी भी कैसा, खास साली। ऊर्मीको पास बिठाकर उसे समझाता हुआ वह आगे बढ़ता है। काम बहुत तेजीसे आगे बढ़ता हो सो बात नहीं, पर समयकी लम्बाई सार्थक मालूम होती है।

यही बात शर्मिलाको बहुत ज्यादा खटकती है, उसके दिलको धक्का पहुंचता है। ऊर्मीके बचपनको वह समझती है, उसकी गृहिणीपनेकी त्रुटियोंको भी वह स्नेहके साथ सह लेती है; पर व्यवसायके क्षेत्रमें पतिके साथ स्त्री-बुद्धिके दूरत्वको जहाँ उसने स्वयं अपने तईं स्वीकार कर लिया है वहाँ ऊर्मीके बेरोकटोक जाने-आनेको वह कैसे बरदाश्त कर सकती है? उसे यह अच्छा नहीं लगता। इसे वह महज हिमाकत ही समझती है। गीताने

भी यही बताया है, अपनी-अपनी सीमाको मानते हुए चलना ही स्वधर्म है।

मन-ही-मन अत्यन्त अधीर होकर एक दिन उसने ऊर्मीसे पूछा—"क्यों री ऊर्मी, तुझे क्या ये-सब हिसाब-किताब, सवाल-जवाब, ट्रेस करना वगैरह सचमुच अच्छा लगता है?"

"हाँ जीजी, बड़ा अच्छा लगता है।"

शर्मिला अविश्वासके स्वरमें बोली—"हाँ हाँ, लगता है अच्छा! उन्हें खुश करनेके लिए दिखाया करती है अच्छा लगता है।"

खैर यही सही। खुद शर्मिला भी तो यही चाहती है कि ठीक वक्तपर खिलाना-पिलाना, कपड़ोंकी सम्हाल रखना, और सेवा-जतन करके शशांकको खुश रखना ऊर्मीका फर्ज है; और इसीलिए उसने उसे यहाँ बुलाया है। फिर क्या बात है जो शशांककी इस जातकी खुशीसे उसकी अपनी जातकी खुशी मेल नहीं खाती?

शशांकको वह बार-बार पास बुलाकर कहती—"उसके साथ तुम क्यों समय नष्ट किया करते हो? इससे तुम्हारे काममें हर्जा होता है। उसकी तो अभी खेलने-खानेकी उमर ठहरी, वह क्या समझे कि कौन-सा काम कितना जरूरी है!"

शशांक कहता—"मुझसे वह कम नहीं समझती।"

शशांक समझता कि इस तारीफसे ऊर्मीकी जीजीको आनन्द मिलता होगा। भोला निर्बोध है बेचारा।

अपने कामके गौरवमें शशांकने जब स्त्रीकी तरफसे अपने ध्यानको जरा संकुचित कर लिया था, तब शर्मिलाने उसे मजबूरन मान लिया

हो सो बात नहीं, उसे उसने अपने तईं गर्वकी बात ही समझी थी। इसीसे, आजकल उसने अपने सेवापरायण हृदयके हकको बहुत कुछ घटा लिया है। उसका कहना है कि मर्द राजाकी जात है, दुःसाध्य कार्य करनेके अधिकारको उन्हें हमेशा प्रशस्त करते रहना चाहिए। नहीं-तो वे औरतोंसे भी नीचे हो जाते हैं। क्योंकि स्त्रियाँ अपनी स्वाभाविक मिठास और प्रेमके जन्मगत ऐश्वर्यसे ही नित्यप्रति घरमें अपने आसनको बड़ी आसानीसे सार्थक किया करती हैं। लेकिन पुरुष अपनेको सार्थक करते हैं प्रतिदिनके संघर्ष और युद्धसे। पुराने जमानेमें राजा लोग बिना-प्रयोजन ही राज्य-विस्तार करने निकला करते थे। उनकी उस युद्धयात्रामें राज्य पानेका लोभ नहीं होता था, उसका उद्देश्य था पौरुषके गौरवकी प्रतिष्ठा करना। इस गौरवमें औरतोंको आड़े न आना चाहिए। शर्मिलाने खुद कभी बाधा नहीं दी, जान-बूझकर ही उसने शशांकको उद्देश्य-साधनके लिए रास्ता छोड़ दिया है। किसी समय उसे उसने अपने सेवा-जालमें उलझा लिया था, फिर भी, बहुत जी दुखं पानेपर भी, उस जालको वह समेटती ही जा रही है। अब भी वह काफी सेवा करती है, पर छिपे-छिपे चुपचाप।

हाय रे, आज उसके पतिकी यह कैसी पराजय दिन-दिन प्रकट होती जा रही है। रोगशय्यासे उसे सब दिखाई नहीं देता, पर आभास काफी मिल जाता है। शशांकका चेहरा देखते ही वह समझ लेती है, आजकल ये कैसे-तो हो गये हैं, हमेशा न-जाने किस धुनमें गरक रहते हैं। इत्ती-सी लड़कीने

आकर, इन थोड़ेसे दिनोंमें, ऐसे कर्मठ पुरुषको इतनी बड़ी साधनाके आसनसे इस कदर विचलित कर दिया, आश्चय है। शर्मिलाको आज अपने रोगसे भी बढ़कर पीड़ा दे रही है पतिकी यह अश्रद्धेयता।

इसमें शक नहीं कि आजकल शशांकके खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेकी व्यवस्था पहले जैसी नहीं चल रही ; जो पथ्य उसे बहुत अच्छा लगता है, खाते वक्त अचानक देखा जाता है कि वही नहीं है, और सब है। उसकी कैफियत मिल जाती है : हालाँ कि कैफियतको इस घरमें कभी कोई महत्त्व नहीं दिया गया, फिर भी सब चुप, कोई कुछ नहीं कहता। ये-सब लापरवाहियाँ पहले बरदाश्त नहीं की जाती थीं, कड़ी सजाके काबिल समझी जाती थीं ; और आज, आज उसी कायदे-कानूनसे बँधे घरमें इतना बड़ा युगान्तर हो रहा है कि बड़ीसे बड़ी त्रुटियाँ यों ही प्रहसन बनकर रह जाती हैं। दोष किसे दिया जाय ? जीजीके कहे-माफिक ऊर्मी जब कि रसोईघरमें बेंतके मोंढ़ेपर बैठी पाक-प्रणालीके संचालन-कार्यमें व्यस्त रहती, और साथ-साथ पाचिका मिसरानीके पुनर्जीवनके इतिहासकी चर्चा भी चलती रहती, तब अचानक शशांकका आविर्भाव होता ; वह कहता—"यह-सब रहने दो अभी।"

"क्यों क्या करना है ?"

"अभी मुझे छुट्टी है, चलो, 'विक्टोरिया-मेमोरियल-बिल्डिंग' देख आयें। उसका घमंड देखकर क्यों हँसी आती है, तुम्हें समझा दूंगा।"

इतने बड़े प्रलोभनके आगे कामसे जी चुरानेके लिए ऊर्मीका मन उसी क्षण चंचल हो उठता। शर्मिला जानती है कि पाकशालासे उसकी सहोदराके गायब हो जानेसे भोज्य-वस्तुके उत्कर्ष-साधनमें कोई भी फर्क नहीं आयेगा, फिर भी, उसके स्निग्ध हृदयका जतन शशांकको आराम पहुंचाये यह चाहना उसके बनी ही रहती। लेकिन आरामका जिक्र छेड़नेसे फायदा ही क्या, जब कि रोज ही स्पष्ट देखनेमें आता कि आराम हो गया है गौण, पति वैसे ही खुश हैं।

इधरसे शर्मिलाके मनमें अशान्ति बढ़ने लगी। रोगशय्यापर करवट बदलती हुई वह अपनेको बार-बार यही कहती रहती—'मरनेके पहले एक यही बात समझमें आई कि और सब-कुछ कर लिया, सिर्फ उन्हें खुश न कर सकी। सोचा था ऊर्मीमें अपनेको ही देख पाऊँगी, पर उसमें मैं कहाँ आई, वह तो बिलकुल ही अलग लड़की है।' खिड़कीके बाहरकी तरफ ताकती हुई सोचा करती, 'मेरी जगह उसने नहीं ली, उसकी जगह मैं नहीं ले सकती। मेरे चले जानेसे नुकसान होगा, पर उसके चले जानेसे सब सूना हो जायगा।'

सोचते-सोचते सहसा याद आ जाती, 'जाड़ेके दिन करीब हैं, गरम कपड़े धूपमें डालने चाहिए।' ऊर्मी तब शशांकके साथ 'पिंगपौंग' खेल रही थी; उसे बुला भेजा।

बोली—'ऊर्मी, यह ले चाभी। गरम कपड़े निकालकर छतपर डलवा दे धूपमें।'

ऊर्मीने अलमारीमें चाभी डाली ही थी कि इतनेमें शशांकने

आकर कहा—"यह-सब पीछे होता रहेगा, अभी बहुत दिन पड़े हैं। चलो, खेल खतम कर लें।"

"पर जीजी—"

"अच्छा, जीजीसे मैं छुट्टी लिये आता हूं।"

जीजीने छुट्टी दे दी ; साथ ही एक गहरी साँस लेकर रह गई।

नौकरानीको बुलाकर उससे कहा—"जरा मेरे माथेपर ठंडे पानीकी पट्टी तो रख दे।"

ऊर्मी यद्यपि बहुत दिनों बाद सहसा छुटकारा पाकर अपनेको भूल-सी गई थी, फिर भी अचानक किसी-किसी दिन उसे याद आ जाती अपने जीवनकी कठोर जिम्मेदारी। वह तो स्वाधीन नहीं है, अपने व्रतके बन्धनसे बँधी हुई है। और उस व्रतके साथ मिलकर जिस बन्धनने उसे एक खास व्यक्तिके साथ बाँध दिया है उसका अनुशासन है उसपर। उसके दैनिक कर्तव्यकी छोटी-छोटी त्रुटियोंको वही तो सुझाया करता था ; और जाते वक्त त्रुटि-सुधारका तरीका भी बता गया है वह। इस बातको ऊर्मी किसी भी तरह अस्वीकार नहीं कर पाती कि उसके जीवनपर नीरदका अधिकार हमेशाके लिए हो गया है। नीरद जब यहाँ मौजूद था तब न मानना आसान था, मनमें जोर पाती थी। अब उसकी इच्छा बिलकुल ही उलटी हो गई है, और साथ ही कर्तव्य-बुद्धि भी पीछा नहीं छोड़ती। कर्तव्य-बुद्धिके अत्याचारसे मन और-भी बिगड़ा जा रहा है। अपने कसूरको

माफ करना उसके लिए कठिन हो गया है; और इसीलिए कसूर अनुशासन नहीं मानता। अपने दर्दपर अफीमका परलेप लगानेके लिए शशांकके साथ हँसी-खेलमें अपनेको बहलाये रखनेकी कोशिश करती है। कहती है, 'जब वक्त आयेगा तब अपने-आप ही सब ठीक हो जायगा; अभी जितने दिनकी छुट्टी मिली है, उन सब बातोंको रहने दिया जाय। और फिर, सहसा किसी-किसी दिन मन और मस्तिष्कको झकझोरकर उठ खड़ी होती; और ट्रङ्कसे किताब-कापी वगैरह निकालकर पूरा ध्यान लगाकर कर्तव्य पालने बैठ जाती। तब फिर शशांककी पारी आती। किताब वगैरह छीनकर वह बक्समें बन्द कर देता और उसपर खुद जमकर बैठ जाता। ऊर्मी कहती—"जीजाजी, यह ठीक बात नहीं है। आप बहुत ज्यादती कर रहे हैं। मेरा समय नष्ट न कीजिये।"

शशांक कहता—"तुम्हारे समय नष्ट करनेमें अपना समय भी नष्ट करना पड़ता है मुझे। लिहाजा हिसाब बराबर।"

इसके बाद थोड़ी देर तक छीनाझपटीकी कोशिश करके अन्तमें ऊर्मीको हार माननी पड़ती। और वह हार उसके लिए आपत्ति-जनक होती हो, ऐसा तो नहीं मालूम होता। इस तरहकी बाधाओंसे कर्तव्य-बुद्धि दो-चार दिन पीड़ा पाती रहती, उसके बाद फिर वही रफ्तार जो पहले थी।

ऊर्मी कहती—"जीजाजी, मुझे कमजोर न समझ लेना। मनके अन्दर प्रतिज्ञा मैंने काफी दृढ़ रख छोड़ी है।"

"यानी?"

"यानी यहाँसे डिग्री लेकर यूरोप जाऊँगी डाक्टरी सीखने।"

"फिर ?"

"फिर अस्पताल खोलकर उसकी पूरी जिम्मेवारी लूँगी अपने ऊपर।"

"और किसकी जिम्मेवारी लोगी ? वो जो नीरद मुखर्जी नामका एक इनसफरेब्ल—"

शशांकका मुंह बन्द करके ऊर्मी कहती—"चुप रहो। ऐसी बातें करोगे तो मेरे साथ तुम्हारा हमेशाके लिए झगड़ा हो जायगा।"

ऊर्मी अपनेको अत्यन्त कठोर करके कहती, 'सच्चा बनना पड़ेगा मुझे, सच्चा बनना पड़ेगा।' उसके पिता स्वयं नीरदके साथ उसका सम्बन्ध तय कर गये हैं, वह सोचती है, उस सम्बन्धके प्रति उसका सच्चा न रहना असतीत्व है।

लेकिन मुश्किल यह है कि दूसरे पक्षकी तरफसे कोई जवाब नहीं मिलता। ऊर्मी मानो एक ऐसा पौधा है जिसने मिट्टीको तो जकड़ रखा है, पर आकाशके प्रकाशसे वञ्चित है ; पत्ते उसके पीले पड़ गये हैं। किसी-किसी वक्त असहिष्णु हो उठती ; मन ही मन सोचती, 'यह शख्स है कैसा, एक चिट्ठी-सी चिट्ठी भी लिखते नहीं बनता इससे ?'

ऊर्मी बहुत दिनों तक कॉनवेन्टमें पढ़ी है। और-कुछ हो चाहे न हो, अंगरेजीमें उसकी विद्या पक्की है। और यह बात नीरदको मालूम थी। इसीलिए नीरदने निश्चय कर रखा था कि वह अंगरेजी लिखकर ऊर्मीको मुग्ध कर देगा। बंगलामें चिट्ठी लिखता तो आफतसे बच जाता ; पर अपने बारेमें बेचारा जानता ही नहीं

कि वह अंगरेजी नहीं जानता। भारी-भारी शब्द जुटाकर और किताबोंके लम्बे-चौड़े वाक्य जोड़कर अपनी भाषाको बोरोंसे लदी बैलगाड़ी-सी बना देता। ऊर्मीको हँसी आती, पर हँसनेमें शरमाती; और अपनेको डाटकर कहती, 'देशी आदमीकी लिखी हुई विदेशी भाषाकी त्रुटियोंको दोष समझना महज हिमाकत है, स्नॉबिश।'

देशमें रहते हुए नीरदने जब उसके सामने क्षण-क्षणमें सदुपदेश दिये हैं तब वे उसके रंग-ढंगसे गम्भीर हो उठे हैं। उसमें उसने गौरव अनुभव किया है; तब जितना वह कानसे सुनती थी उससे कहीं ज्यादा वजन अपने अन्दाजसे बढ़ा लेती थी। लेकिन लम्बी चिट्ठीमें अन्दाजके लिए गुंजाइश ही नहीं रहती। कमर-कसे-खड़े भारी-भारी शब्द हलके हो जाते हैं, मोटी-मोटी आवाज पकड़ी जाती है कहनेके विषयके अभावके अपराधमें।

नीरदके जिस भावको उसने पास रहते हुए सह लिया था वही दूरसे उसे सबसे ज्यादा खटकने लगा। 'यह भला-आदमी हँसना तो बिलकुल जानता ही नहीं।' चिट्ठीमें यह कमी सबसे ज्यादा ऊँची होकर अपनेको जताती रहती। और यही वजह है कि ऊर्मीका मन खामखा शशांकके साथ नीरदकी तुलना करने बैठ जाता।

तुलनाका एक कारण उस दिन अकस्मात् ही सामने आ पड़ा। कोई कपड़ा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बक्सके नीचे ऊनका अधूरा बुना एक जूता हाथ पड़ गया। चार साल पहलेकी बात याद आ गई। हेमन्त तब मौजूद था। सब मिलकर तब

दार्जिलिंग गये हुए थे। हँसी-खुशी आमोद-प्रमोदका कोई अन्त न था। हेमन्त और शशांक दोनों मिलकर हँसी-मजाकका पागल झरना-सा बहा रहे थे। ऊर्मीने अपनी एक मौसीसे ऊनका नया काम सीखा था। जन्म-दिनमें भाई-साहबको देनेके लिए वह जूते बुन रही थी। उसपर शशांक खूब हँसा; और बोला—"अपने भाई साहबको और चाहे जो भी दो, पर जूते मत देना, भगवान मनुने कहा है कि इससे पूज्यजनोंका असम्मान होता है।" ऊर्मीने उसी वक्त कटाक्ष करके कहा था—"तो भगवान मनुने किसे देनेको कहा है ?"

शशांकने गंभीर मुंह बनाकर कहा—"असम्मानका सनातनी हकदार है बहनोई। मेरे हककी चीज अब तक मुझे नहीं मिली, बहुत दिन हो गये। ब्याज चढ़-चढ़कर भारी हो रही है, अच्छा ही है।"

"कब किसने वादा किया था, याद तो नहीं आता।"

"याद आनेकी बात ही नहीं वह। तब तुम थीं बिलकुल नाबालिगा। इसलिए तुम्हारी जीजीके साथ शुभ लग्नमें जिस दिन इस सौभाग्यवानका ब्याह हुआ उस दिन सुहाग-रातकी नेत्री तुम नहीं बन सकी थीं। आज उन कोमल करपल्लवोंसे अरचित कनेठीने ही रूप ग्रहण किया है इन करपल्लवोंसे रचित पादुका-युगलमें उनपर मेरा दावा रहा, पहलेसे कहे रखता हूं।"

उसका वह दावा पूरा नहीं किया गया; वे जूते यथासमय प्रणामीके रूपमें चढ़ाये गये थे भाई साहबके चरणोंमें।

इसके कुछ दिन बाद ऊर्मीको शशांककी एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी पाकर वह खूब हँसी थी। वह चिट्ठी अब भी उसके बकसेमें रखी है। आज वह फिर उसे खोलकर पढ़ने लगी, उसमें लिखा था :—

"कल तुम तो चली गईं। तुम्हारी स्मृति अभी पुरानी भी न हो पाई थी कि तुम्हारे नाम एक कलंक फैलाया जाने लगा; उसे अगर तुमसे छिपाया जाय तो मैं अकर्तव्यका भागी बनूंगा।

मेरे पैरोंमें तालतल्लाकी चट्टी बहुतोंने देखी हैं। पर उससे भी ज्यादा गौरसे देखा है उनके छिद्रोंको भेदकर मेरे चरण-नखर पंक्तिको मेघमुक्त चन्द्रमालाके समान। (देखो भारतचन्द्रका 'अन्नदामङ्गल'; और उपमाकी सचाईके सम्बन्धमें शक हो तो अपनी जीजीसे इसकी मीमांसा करा सकती हो) आज सवेरे हमारे दफ्तरके बृन्दावन नन्दीने आकर जब मेरे स-पादुक चरण छूकर प्रणाम किया, तब मेरी पद-मर्यादामें जो विदीर्णता प्रगट हुई थी उसका अगौरव मेरे मनमें आन्दोलित होने लगा। अपने सेवकसे मैंने पूछा, 'महेश, मेरी दूसरी चट्टीकी जोड़ी किस अनधिकारी चरणोंकी शोभा बढ़ा रही है?' उसने सिर खुजाते हुए जवाब दिया, 'उस-घरकी ऊर्मी-मौसी वगैरहके साथ जब आप दार्जिलिंग गये थे तब चट्टियाँ आपके साथ गई थीं। आप आये तब साथमें एक चट्टी थी, दूसरी नहीं—' उसका चेहरा सुर्ख हो उठा। मैंने डाटकर कहा, 'बस, चुप रहो।' वहाँ बहुतसे लोग थे। चट्टी चुराना हीन कार्य है। लेकिन आदमीमें कमजोरियाँ होती हैं, लोभ प्रबल होता है,

इसलिए वह ऐसे काम कर बैठता है। ईश्वर शायद उसे क्षमा करेंगे। फिर भी, चोरीके काममें बुद्धिका परिचय हो तो दुष्कार्यकी ग्लानि बहुत-कुछ दूर हो जाती है। लेकिन एक चट्टी, धिक्!"

चिट्ठी पाकर ऊर्मी मुसकराती हुई ऊनके जूते बुनने बैठी थी, पर काम पूरा न कर सकी। ऊनके काममें फिर उसका उत्साह ही न रहा। आज एक जूता पाकर उसने तय किया कि यह अधूरा जूता ही वह शशांकको भेंट करेगी, उस दार्जिलिंग-यात्राकी साल-गिरहके दिन, जो कुछ सप्ताह बाद ही आनेवाला है। उसने एक गहरी साँस ली—'हाय रे, कहाँ गये वे हास्योज्ज्वल-आकाशमें हलके डैनोंसे उड़ते-हुए दिन?' आज तो उसके सामने सिर्फ कर्तव्यके बोझसे परेशान बगैर-छुट्टी और बिना-फुरसतकी खुश्क जिन्दगीका रेगिस्तान-ही-रेगिस्तान दिखाई दे रहा है।

आज फागुनकी पूनो है। होली खेलनेका दिन। किसी जरूरी कामसे शशांक बाहर गया हुआ था। इस खेलके लिए उसे फुरसत नहीं। इस दिनको भी वे भूल गये! ऊर्मीने आज रोगशय्यापर पड़ी हुई अपनी बहनके पाँवोंसे अबीर लगाया और प्रणाम किया। उसके बाद किसीकी तलाशमें वह घूमती-फिरती बाहरवाले कमरेमें पहुंची। देखा कि शशांक टेबिलपर झुका एकाग्र चित्तसे काम कर रहा है। तो आ गये बाहरसे! दबे-पाँव वह चुपकेसे उसके पीछे जा खड़ी हुई; और अबीरकी मुट्ठी भरकर उसके सिर-मुँहको खूब कसके रगड़ दिया; कागजात सब रंगीन हो गये। खूब छीना-झपटी हुई; कोई भी किसीसे हारना

नहीं चाहता। टेबिलपर लाल स्याहीकी दावात भरी रखी थी; शशांकने उठाकर ऊर्मीकी साड़ीपर उँड़ेल दी; और आँचलमेंसे जबरदस्ती गुलाल छीनकर उसके मुँहपर रगड़ दिया। फिर शुरू हुआ भागना-दौड़ना, धमाचौकड़ी, शोरगुल। काफी अबेर हो गई, किसीको नहाने-खानेका होश नहीं। ऊर्मीके कलहास्य और स्वरोच्छ्वाससे मकान गूंज उठा। अन्तमें, शशांककी तबीयत खराब होनेकी आशंकासे दूतपर दूत भेजकर शर्मिलाने इन्हें किसी तरह निवृत्त किया।

दिन कभीका ढल चुका है। रात भी हो चुकी है। फूलोंसे लदे कदमके पेड़के ऊपर पूर्णिमाका चाँद दिखाई दिया, उसकी चाँदनीसे सारा खुला हुआ आकाश चाँदी-सा चमक उठा। सहसा फागुनकी हवाका एक झोका आया; और बगीचेके पेड़ झरझरका गान गाते हुए झूमने लगे, जमीनपर पड़ी छाया भी उसमें शरीक हो गई। खिड़कीके पास ऊर्मी चुपचाप बैठी तमाशा देख रही थी। उसे नींद नहीं आ रही। उसकी छातीके भीतरका खून अब भी कल्पनाके झूलेमें झूल रहा है, शान्त नहीं होना चाहता। आमके बौरोंकी सुगन्धसे मन भर उठा है। आज, वसन्तमें माधवी-लताकी नस-नसमें जो फूल खिलानेकी वेदना होती है ठीक वैसी ही वेदना उसे उत्सुक किये डाल रही है। बगलवाले नहान-घरमें जाकर उसने माथा धो लिया, भींगी तौलियासे देह अंगोछ डाली। बिस्तरपर पड़ी-पड़ी बहुत देर तक करवट बदलती रही; और फिर थककर सपना देखती-सी कब सो गई, उसे पता नहीं।

रातके तीन बजे उसकी फिर नींद छूट गई। चाँद तब खिड़कीके सामने नहीं था। कमरेके अन्दर अँधेरा है, और बाहर बगीचेमें चाँदनी और छायाकी आँखमिचौली चल रही है। ऊर्मीकी छाती फटने लगी, उसे जोरकी रुलाई आई, उससे वह रोके न रुकी। औंधी पड़कर तकियेमें मुँह छिपाकर रोने लगी। उसकी यह रुलाई व्यथित हृदयका रोना है, भाषामें इसके लिए शब्द नहीं, कोई अर्थ नहीं। पूछनेसे क्या वह बता सकती है कि कहाँसे इस वेदनाकी ज्वार उद्वेलित हो उठी है उसके तन-मनमें, जो बहाये लिये जा रही है दिनकी कार्यसूचीको, रातकी सुख-निद्राको ?

सवेरे ऊर्मीकी जब आँख खुली तब कमरेमें धूप आ चुकी थी। सुबहके काम-काजमें वह गैरहाजिर रही; थकावटका खयाल करके शर्मिलाने उसे क्षमा कर दिया।

ऊर्मी आज किस बातके पश्चात्तापसे अवसन्न हो पड़ी है, क्यों मुरझा-सी गई है, क्यों वह महसूस कर रही है कि उसकी हार हो चली ? अपनी जीजीसे जाकर बोली—"जीजी, मैं तो तुम्हारे यहाँ कुछ काम ही नहीं कर पाती; कहो तो चली जाऊँ घर ?"

आज तो शर्मिलासे कहा नहीं गया कि 'नहीं, मत जा।' बोली—"अच्छा, जा तू। तेरी पढ़ाईका हर्ज हो रहा है। बीच-बीचमें जब वक्त मिले तो देख-भाल जाया कर।"

शशांक तब कामसे बाहर चला गया था। उस मौकेसे उसी दिन ऊर्मी अपने घर चली गई।

शशांक उस दिन यान्त्रिक तसवीर बनानेका एक सेट सामान लेकर घर लौटा। ऊर्मीको देना चाहता था; तय हुआ था कि वह उसे यह विद्या सिखायेगा। घर आकर जब उसे यथास्थान न देखा तो वह शर्मिलाके पास पहुंचा; बोला—"ऊर्मी गई कहाँ ?"

शर्मिलाने कहा—"यहाँ उसकी पढ़ाईमें हर्जा हो रहा था, सो अपने घर चली गई है।"

"कुछ दिन उस हर्जाके लिए तैयार होकर ही तो आई थी वह। हर्जकी बात आज ही अचानक कैसे उठी ?"

बातके सुरसे शर्मिला ताड़ गई कि शशांक उसीपर शक कर रहा है। उस विषयमें व्यर्थ बहस न करके उसने कहा—"मेरा नाम लेकर तुम उसे बुला लाओ, वो 'ना' नहीं करेगी।"

ऊर्मीने घर आकर देखा कि बहुत दिन बाद विलायतसे उसके नाम नीरदकी चिट्ठी आई है और टेबिलपर पड़ी-पड़ी वह उसका इन्तजार कर रही है। उसे खोलनेमें उसे डर लगने लगा। मनमें समझ रही थी, उसकी तरफ अपराधोंका ढेर जमा हो रहा है। इसके पहले वह नियम-भंगकी कैफियतमें जीजीकी बीमारीका उल्लेख कर चुकी है। कुछ दिनोंसे वह कैफियत भी झूठी होती जा रही है। शशांकने बहुत ज्यादा जिद करके शर्मिलाके लिए दिनको एक और रातको एक नर्स रख दी। डाक्टरके विधान-अनुसार रोगीके कमरेमें हरवक्त आत्मीयजनोंका आना-जाना वे रोक देती हैं। ऊर्मी मनमें समझती है कि नीरद जीजीकी बीमारीकी कैफियतको भी बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देगा,

कहेगा, फालतू बात है। वास्तवमें है भी फालतू बात। उसकी तो वहाँ जरूरत नहीं। उसने अनुतप्त चित्तसे तय किया कि अबकी बार वह दोष मंजूर करके क्षमा माँगेगी। कहेगी, 'अब कभी भी गलती न होगी, हरगिज नियम भंग न करूँगी।'

चिट्ठी लिखनेके पहले, बहुत दिन बाद आज फिर निकाल लिया उसने नीरदका फोटोग्राफ, सामने टेबिलपर रख दिया। जानती है वह कि इस तसवीरको देखकर शशांक बहुत मजाक उड़ायेगा; फिर भी निश्चय किया कि उससे वह हरगिज न शरमायेगी। यही होगा उसका प्रायश्चित्त। नीरदके साथ उसका ब्याह होगा, इस प्रसंगको जीजीके घर वह दबा दिया करती थी। दूसरे लोग भी न छेड़ते थे; क्योंकि वे जानते हैं कि प्रसंग वहाँ सबके लिए अप्रिय है। आज हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर ऊर्मीने निश्चय कर लिया कि वह अपने हर व्यवहारमें इस बातको जोरसे घोषित करती रहेगी। कुछ दिनोंसे छिपा रखी थी उसने अपने एनगेजमेण्टकी अंगूठी। आज वह भी निकालकर पहन ली। अंगूठी बहुत ही कम कीमतकी थी; नीरदने अपनी ईमानदार-गरीबीके गर्वसे ही दी थी इतनी सस्ती अंगूठी; और उसकी कीमत हीरेसे भी बढ़ा दी थी। उसके मनका भाव था, 'अंगूठीकी कीमतसे मेरी कीमत नहीं, मेरी कीमतसे अंगूठीकी कीमत है।'

अपनेको यथासाध्य संशोधन करके ऊर्मीने बहुत ही धीरे-धीरे लिफाफा खोला।

चिट्ठी पढ़कर वह सहसा उछल उठी। उसकी तबीयत हुई

कि वह नाचे; पर नाचनेकी आदत नहीं, लाचारी थी। सितार पड़ा हुआ था बिस्तरपर, उसे उठाकर बगैर सुर बाँधे ही उसने झनझन-झनकार शुरू कर दी, बगैर ताल-सुरके मनमाना बजाने लगी।

ठीक इसी समय शशांक आ पहुंचा; कमरेमें घुसते ही उसने पूछा—"बात क्या है ऊर्मी? ब्याहका दिन तय हो गया क्या?"

"हाँ जी, जीजाजी! तय क्या, हो ही गया समझो।"

"हरगिज उसमें कोई फर्क नहीं पड़नेका?"

"हरगिज नहीं।"

"तो अभीसे नौबतवालोंको बयाना दे दिया जाय; बागबाजारके रसगुल्ले और इन्दुभूषणकी रसमलाई?"

"तुम्हें किसी तरहकी कोशिश नहीं करनी पड़ेगी?"

"खुद ही सब कर-करा लोगी? धन्य हो वीरांगना, धन्य हो! और ब्याहली-बहूको आशीर्वाद कौन देगा?"

"उस आशीर्वादके रुपये मेरी अपनी जेबसे ही निकलेंगे।"

"यानी मछलीके तेलसे मछली तलना? ठीकसे समझ नहीं सका?"

"यह लो समझ देखो।"

कहकर ऊर्मीने चिट्ठी उसके हाथमें दे दी।

पढ़कर शशांक खूब जोरसे हँस पड़ा।

लिख रहा है, रिसर्चके जिस दुरूह कार्यमें नीरद अपनेको समर्पण करना चाहता है, भारतमें उसकी सफलता सम्भव नहीं। इसीलिए उसे अपने जीवनका एक-और त्याग मान लेना पड़ा है।

ऊर्मीके साथ विवाहका सम्बन्ध तोड़े बगैर और कोई चारा नहीं। एक यूरोपीय महिला उसके साथ ब्याह करके उसके काममें आत्म-दान करना चाहती है। पर काम वही है जो राजाराम बाबू करना चाहते थे, चाहे वह भारतमें हो या यूरोपमें। राजाराम बाबूने जिस कामके लिए रुपये देने चाहे थे, उसका कुछ हिस्सा विलायतमें खर्च किया जाय तो कोई अन्याय न होगा। उससे मृत व्यक्तिके प्रति सम्मान बढ़ेगा ही।

शशांकने कहा—"जीवित व्यक्तिको कुछ-कुछ देकर अगर वहीं दूरदेशमें ही कहीं दीर्घकाल तक जिलाये रख सको, तो कोई बुराई नहीं। रुपये बन्द करनेसे डर है कि भूखके मारे कहीं यहाँ तक धावा न कर दे।"

ऊर्मी हँसती हुई बोली—"तुम्हें अगर ऐसा डर हो तो तुम्हीं देना रुपया; मैं एक पैसा भी न दूंगी।"

"बादमें मन बदल तो नहीं जायगा। मानिनीका अभिमान रहेगा तो अटल ही?"

"बदल भी जाय तो तुम्हारा उसमें क्या साझा?"

"सवालका जवाब देनेसे घमंड तुम्हारा और भी बढ़ जायगा, लिहाजा तुम्हारी भलाईके लिए ही चुप रहता हूं। लेकिन मैं सोच रहा हूं, उस शख्सके जबड़े तो मामूली नहीं मालूम होते!"

ऊर्मीके मनसे एक बड़ा-भारी बोझ-सा उतर गया, बहुत दिनोंका लदा हुआ बोझ। मुक्तिके आनन्दमें वह क्या करे, कुछ समझमें नहीं आ रहा। उसने अपने कामकी सूची निकाली और फाड़के फेंक दी। गलीमें भिखारी खड़ा भीख माँग रहा था,

उसने अपनी अंगूठी उतारकर खिड़कीमें से उसकी तरफ फेंक दी।

पूछने लगी—"इन लाल-पेन्सिलके दागवाली मोटी-मोटी किताबोंको कोई हॉकर खरीद सकता है?"

"अगर न खरीदे तो उसका नतीजा क्या होगा, जरा सुना तो दो?"

"मुझे डर है, कहीं इनमें पुराने समयका भूत अपना अड्डा न कायम कर ले। आधी रातको कहीं वह तर्जनी उठाकर मेरे बिस्तरके पास आकर खड़ा न हो जाया करे?"

"अगर ऐसी आशंका हो तो हॉकरकी बाट न देखूँगा, मैं खुद ही खरीद लूँगा।"

"क्या करोगे खरीदकर?"

"हिन्दू-शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टिक्रिया। गया तक जानेको तैयार हूं मैं, उससे अगर तुम्हारे मनको तसल्ली मिले।"

"नहीं, इतनी ज्यादती छाजेगी नहीं।"

"अच्छा तो अपनी लाइब्रेरीके एक कोनेमें 'पिरामिड' बनाकर उन्हें 'ममी' करके रख दूंगा।"

"आज लेकिन तुम कामपर नहीं जा सकोगे।"

"दिन-भर?"

"हाँ दिन-भर।"

"क्या करना होगा?"

"मोटरमें बैठकर गायब होना होगा।"

"अपनी जीजीसे छुट्टी तो ले आओ।"

"नहीं, वापस आकर जीजीसे कहूंगी, और तब उनसे खूब फटकार सुनूँगी। वह फटकार मुझे अच्छी लगेगी।"

"अच्छी बात है, मैं भी तुम्हारी जीजीकी फटकार हजम करनेको तैयार हूं; टायर फट जाय तो मनमें मलाल न लाऊँगा, घंटेमें पैंतालीस माइलकी रफ्तारसे दो-चार राहगीरोंको पहियेके नीचे दबाकर एकदम जेलखाने तक पहुंचनेमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं; लेकिन तीन बार वचन दो कि मोटर-यात्रा खतम होनेपर तुम हमारे ही घर वापस चली चलोगी।"

"चलूंगी, चलूंगी, चलूंगी।"

मोटर-यात्राके अन्तमें दोनों भवानीपुरके मकानमें पहुंचे; पर घंटेमें पैंतालीस माइलकी रफ्तार खूनसे अभी तक निकल नहीं रही है। संसारकी, समाजकी, घर-गृहस्थीकी, सबकी माँग, सबका दावा, सारा भय, सारी लज्जा इस रफ्तारके नीचे पड़कर विलुप्त हो गई।

कई दिनों तक शशांकके सारेके सारे काम ज्योंके त्यों पड़े रहे; कामका सारा सिलसिला ही बिगड़ गया, कई काम चौपट भी हो गये। भीतरसे उसका मन कहने लगा, 'यह अच्छा नहीं हो रहा है। कामका बहुत जबरदस्त नुकसान हो सकता है।' रातको बिस्तरपर पड़ा-पड़ा दुश्चिन्ताकी दुःसम्भावनाको बढ़ा-चढ़ा कर देखा करता। लेकिन, दूसरे दिन फिर वह स्वाधिकार-प्रमत्त 'मेघदूत'के यक्षकी तरह हो जाता। कोई एक बार शराब पी ले तो उसके पश्चात्तापको ढकनेके लिए उसे फिर पीनी पड़ती है।

शशाङ्क

कुछ दिन इसी तरह बीते। आँखोंमें नशा छा गया, मन हो उठा गँदला।

अपनेको साफ-साफ समझनेमें ऊर्मीको समय लगा; लेकिन समझा एक दिन अचानक चौंककर।

मथुरा-दादासे ऊर्मी न-जाने क्यों डरती है; और जहाँ तक बनता उनसे दूर-दूर रहती। उस दिन मथुरा बाबू सवेरे आये और दोपहर तक रहे।

उसके बाद जीजीने ऊर्मीको बुलाया। चेहरा उसका कठोर किन्तु शान्त था। बोली—"रोजमर्रा उनके काममें बिघन डालकर तैंने किया क्या है मालूम है ?"

ऊर्मी डर गई। बोली—"क्या हुआ जीजी ?"

"मथुरा-दादा कह गये हैं, कुछ दिनोंसे तेरे जीजाजीने बिलकुल ही काम नहीं देखा। जवाहरपर भार दे रखा है; वह हर चीजमें दोनों हाथोंसे चोरी कर रहा है; बड़े-बड़े गोदामोंकी छत चलनी हो गई हैं, उस दिन जोरका पानी गिरा तब पोल खुली! माल सब बरबाद जा रहा है। अपनी कम्पनीका कितना भारी नाम है, इसीसे बगैर जाँच किये बिल चुक आये। अब बदनामी और नुकसानका पहाड़ टूट पड़ा है सरपर। मथुरा-दादा अलग हो जाना चाहते हैं।"

ऊर्मीकी छाती धक हो उठी; चेहरा पड़ गया राख-सा सफेद-फक। एक क्षणमें बिजलीकी तरह अपने मनका गुप्त रहस्य

प्रकट हो गया। साफ समझ गई कि न-जाने कब, अज्ञातमें, उसका मन हो उठा था उन्मत्त पागल, उसे होश नहीं; अच्छे-बुरे का वह कुछ भी विचार नहीं कर सकी। शशांकका काम तब था उसका प्रतिद्वन्द्वी, उसीके साथ उसने लड़ाई ठानी थी। उसे कामसे छुड़ाकर हर वक्त अपने पास पानेके लिए वह हमेशा भीतर-ही-भीतर तड़पती रहती थी। कितने ही दिन ऐसा हुआ है कि जब शशांक नहान-घरमें नहा रहा है तब ऑफिससे कामकी बात लेकर कोई आया है और ऊर्मीने बगैर कुछ सोचे समझे ही कहला दिया है—"कह दो उसे, अभी मुलाकात नहीं होगी।"

उसे डर रहता कि शशांक कहीं नहाकर तुरत ही दफ्तर न चला जाय; और वहाँ जाकर काममें फँस गया तो आजका सारा दिन ही मिट्टी हो जायगा। अपने उपद्रवी नशेका घातक चित्र उसकी आँखोंके सामने एकाएक नाच उठा। उसी वक्त वह अपनी जीजीके पैरोंपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बार-बार रुँधे हुए कंठसे कहने लगी—"निकाल दो जीजी मुझे, अपने घरसे निकाल दो; इसी वक्त निकाल बाहर करो।"

आज शर्मिलाने निश्चितरूपसे तय कर लिया था कि वह ऊर्मीको हरगिज न क्षमा करेगी। पर अब उसका मन पिघलकर पानी-पानी हो गया।

धीरे-धीरे ऊर्मीके माथेपर हाथ फेरते हुए उसने कहा—"तू कोई फिकर मत कर; जैसा होगा उपाय किया जायगा।"

ऊर्मी उठके बैठ गई ; बोली—"तुम्हारा अकेलेका ही नुकसान क्यों होगा जीजी, मेरे पास भी तो रुपया है।"

शर्मिलाने कहा—"पगली कहींकी ! मेरे पास कुछ नहीं है क्या ? मथुरा-दादासे मैंने कह दिया है, इस विषयको लेकर वे कुछ गड़बड़ न करें। नुकसान मैं भर दूंगी। और, तुझसे भी कहती हूं ऊर्मी, उन्हें यह बात नहीं मालूम होनी चाहिए कि मुझे सब मालूम पड़ गया है।"

"माफ करो जीजी, मुझे माफ करो।"—कहती हुई ऊर्मी फिर जीजीके पाँवोंपर अपना सिर धुनने लगी।

शर्मिलाने अपने आँसू पोंछते हुए थके हुए कंठसे कहा—"कौन किसे माफ करेगा बहन ! संसार बड़ा ही जटिल है। जो सोचती हूं सो होता नहीं, जिसके लिए जिन्दगी तककी बाजी लगा देती हूं वह काम भी पार नहीं पड़ता।"

अब तो ऊर्मीका यह हाल हो गया कि जीजीको छोड़कर एक क्षण भी इधर-उधर नहीं होती। दवा-दारू देना, नहलाना, खिलाना, सुलाना वगैरह सब काम अपने हाथसे करती। फिरसे किताबें पढ़ना शुरू कर दिया, और वह भी जीजीके पलंगके पास बैठकर। अपनेपर अब उसे विश्वास नहीं रहा, शशांकपर भी नहीं।

नतीजा यह हुआ कि शशांक बार-बार रोगीके कमरेमें आने लगा। पुरुष अपनी अन्धताके कारण ही समझ नहीं पाता कि उसकी तड़पन स्त्री ताड़ रही है, या ऊर्मी मारे शरमके गड़-गड़ जाती है। शशांक आता है मोहनबगानके फुटबॉल खेलका प्रलोभन लेकर, व्यर्थ हो जाता। अखबारमें छपे चार्ली चैपलिनके

सिनेमाके विज्ञापनपर लाल-पेन्सिलका निशान लगाकर ऊर्मीके सामने रखता, पर उससे भी सफलता नहीं मिलती। ऊर्मी जब दुर्लभ नहीं थी तब तमाम बाधा-विघ्नोंके बावजूद शशांक थोड़ा-बहुत अपना काम-काज चलानेकी कोशिश करता था, पर अब वह भी बिलकुल असम्भव हो गया।

अभागेके इस निरर्थक निपीड़नसे शुरू-शुरूमें शर्मिला अत्यन्त दुःखमें भी सुख पाती थी। पर अब क्रमशः जब देखा कि उसकी वेदना प्रबल हो उठी है, चेहरा सूख गया है, आँखोंके नीचे काला दाग पड़ गया है, तो भीतरसे उसका जी बहुत दुःख पाने लगा। खाते वक्त ऊर्मी शशांकके पास नहीं बैठती, इसलिए शशांकका खाने-पीनेका उत्साह और परिमाण दोनों ही घटता जा रहा है, यह उसका चेहरा देखते ही मालूम हो जाता है। फिलहाल, इस घरमें अचानक जो आनन्दकी बाढ़-सी आई थी वह खतम हो गई, पानी सूख चला ; ऊपरसे एक दुःख यह और बढ़ गया कि पहले जो बात थी वह भी नहीं रही।

किसी दिन शशांक अपने चेहरेके संस्कार-कार्यमें बिलकुल उदासीन था। नाईसे ऐसे बाल बनवाता कि जिसे सिर मुड़ाना भी कहा जा सकता है। बाल बढ़ानेकी चला ही न थी तब। शर्मिलाने इसपर बहुत-कुछ मगजपच्ची करती, पर आखिर झख मारकर रह जाती। मगर इधर देखा गया कि ऊर्मीकी जोरकी हँसीके साथ की-गई संक्षिप्त आपत्ति व्यर्थ नहीं गई। नये संस्करणके केशोद्गमके साथ-साथ सुगन्धित तेल भी माथेमें पड़ने लगा, जो कि अपने होशमें शायद उसका पहला काम था।

लेकिन उसके बाद, आजकल, उसकी तरफसे केशोन्नतिके विषयमें जो अनादर हो रहा है वही उसकी अन्तर्वेदनाको प्रकट किये दे रहा है ; इतना ज्यादा कि उसपर प्रकट या अप्रकट किसी भी रूपमें तीव्र हँसी नहीं चल सकती। शर्मिलाकी उत्कण्ठा उसके क्षोभसे भी आगे बढ़ गई। पतिके प्रति करुणा और अपने प्रति धिक्कारका भाव ऐसा भर गया कि भीतरसे टीस मारने लगा, साथ-साथ बीमारीकी बिथा भी बढ़ने लगी।

किलेके मैदानमें पलटनकी लड़ाईका खेल होगा। शशांक डरते-डरते पूछने आया—"चलोगी ऊर्मी, देखने ? अच्छी जगहका इन्तजाम कर रखा है।"

ऊर्मीके जवाब देनेसे पहले ही शर्मिला बोल उठी—"जायगी क्यों नहीं। जरूर जायगी। घरमें बैठे-बैठे बेचारीका जी घुटने लगा है, बाहर घूम आये तो अच्छा ही है।"

प्रश्रय मिलते ही दो-तीन दिन बाद फिर पूछने आया—"सर्कस देखने चलोगी ?"

इस प्रस्तावसे ऊर्मीमें उत्साहका संचार होते देखा गया।

उसके बाद, एक दिन—"बोटानिकल गार्डन ?"

इसमें हो गई गड़बड़। जीजीको अकेली छोड़कर ज्यादा देर तक दूर रहनेमें ऊर्मीका मन राजी नहीं हुआ।

उसकी जीजीने खुद शशांकका पक्ष लिया—"दुनिया-भरके राज-मजूरोंके साथ भरी-दोपहरीमें खड़े-खड़े काम करना कोई आसान काम है ! जरा बगैर हवा खाये बिना घूमे-फिरे शरीर नहीं मिट्टी हो जायगा !"

बस एक ही दलीलके जोरसे स्टीमरपर सवार होकर राजगंज तक घूम आना असंगत नहीं मालूम हुआ।

शर्मिला मन-ही-मन कहती—'जिसके लिए व्यापार खोने तककी उन्हें फिकर नहीं, उसका खो जाना उनसे कैसे सहा जायगा ?'

शशांकसे साफ-साफ किसीने कुछ कहा नहीं, पर चारों तरफसे एक तरहका अव्यक्त समर्थन उसे मिल रहा है। उसने एक तरहसे तय कर लिया है कि शर्मिलाके मनमें कोई खास व्यथा-वेदना नहीं है; दोनों बहनोंको एकसाथ मिलाकर देखा जाय तो खुश ही नजर आती हैं। साधारण स्त्रीके लिए ऐसा सम्भव नहीं हो सकता था, पर शर्मिला जो असाधारण है! शशांकने नौकरीके जमानेमें एक आर्टिस्टसे रंगीन पेन्सिलसे शर्मिलाकी एक तसवीर बनवाई थी। इतने दिनोंसे वह पोर्ट-फोलियोमें ही पड़ी थी। उसे निकालकर वह विलायती दूकानपर ले गया बढ़ियासे बढ़िया फ्रेममें मड़ानेके लिए। तसवीर मड़ आई तो उसे उसने आफिसवाले कमरेमें ठीक अपनी टेबिलके सामने दीवारपर लगवा दिया। उसके नीचे तिपाईपर रखी हुई फूलदानीमें माली रोज फूल रख जाता है।

अन्तमें, एक दिन शशांक अपने बगीचेमें गया सूरजमुखी फूल कैसे खिले हैं देखनेके लिए। देखते-देखते अकस्मात् ऊर्मीका हाथ मसककर उसने कहा—"तुम जरूर जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं। और तुम्हारी जीजी, वे तो देवी हैं। उनपर मेरी

जितनी श्रद्धा है उतनी और किसीपर नहीं। वे संसारकी मानवी नहीं ; हमलोगोंसे वे बहुत ऊपर हैं।"

ऊर्मीको यह बात शर्मिलाने बार-बार साफ तौरसे समझा दी है कि अपनी गैरमौजूदगीमें सबसे बड़ी तसल्लीकी बात उसके लिए यह होगी कि ऊर्मीको वह छोड़ चली है। इस घरमें और-कोई लड़की आकर कर्तृत्व करेगी ऐसा सोचना भी उसके लिए अत्यन्त पीड़ादायक है, और साथ ही शशांकका जतन करनेवाली कोई स्त्री न रहेगी ऐसी बुरी अवस्थाको भी वह मन-ही-मन नहीं सह सकती। रोजगार-धन्धेकी बात भी जीजीने उसे समझाई है, कहा है, 'अगर उनके प्यारमें किसी तरहकी बाधा आई तो काम-धन्धा सब चौपट हो जायगा। हाँ, उनका मन सन्तुष्ट रहा तो फिर वे अपने सारे काम-धन्धेको ठीक कर लेंगे।'

शशांकका मन उन्मत्त हो उठा है। वह ऐसे एक चन्द्रलोकमें है जहाँ दुनियादारीकी सारी जिम्मेदारियाँ सुखकी नींद सो रही हैं। आजकल रविवार-पालनमें विशुद्ध ईसाइयों जैसी ही उसकी निष्ठा हो गई है। एक दिन वह शर्मिलासे जाकर बोला—"देखो, जूट-मिलके साहबोंसे 'स्टीम-लंच' मिल गया है ; आज रविवार है, सोचता हूं ऊर्मीको लेकर डायमण्ड-हारबरकी तरफ घूम आऊँ, शामके पहले ही लौट आऊँगा।"

शर्मिलाकी छातीके भीतरकी नसें तन्ना उठीं, मारे वेदनाके माथेकी चमड़ी सिकुड़ गई। शशांककी उधर नजर ही नहीं गई। शर्मिलाने सिर्फ एक बार पूछा—"खाने-पीनेका क्या होगा ?"

शशांकने कहा—"होटलसे तय कर लिया है।"

एक दिन ये सब बातें तय करनेका भार जब कि शर्मिलापर था, तब शशांक था उदासीन। आज सब-कुछ उलट-पुलट गया।

ज्यों ही शर्मिलाने कहा कि 'अच्छा, चले जाना', उसी क्षण, जरा भी प्रतीक्षा न करके शशांक चल दिया लपकता हुआ। शर्मिलाकी तबीयत हुई कि फूट-फूटकर खूब रो ले। तकियामें मुँह छिपाकर बार-बार कहने लगी—"अब मेरे जीनेमें फायदा?"

कल रविवार है, इनके ब्याहकी वर्षगाँठका दिन। आज तक इस अनुष्ठानमें कभी भी छेद नहीं पड़ा, बराबर माधुर्यके साथ इसका पालन होता रहा है। अबकी बार भी पतिको बगैर कुछ कहे शर्मिला बिस्तरपर पड़ी-पड़ी सब तैयारियाँ करवा रही थी। इसमें और कुछ नहीं, सिर्फ इतना ही होता है कि शशांक अपने ब्याहके समयका लाल रंगका बनारसी *'जोड़' पहनता है और शर्मिला पहन लेती है अपने ब्याहकी †'चेली'; फिर पतिके गलेमें माला पहनाकर अपने सामने बिठाकर शर्मिला उन्हें खिलाती-पिलाती है; अगरबत्ती जलाती है; बगलके कमरेमें ग्रामोफोनपर शहनाई बजती रहती है। और-और साल शशांक उसे, पहलेसे बगैर जताये, कोई-न-कोई शौककी चीज खरीद देता था। शर्मिला समझती थी कि इस साल भी जरूर कोई-न-कोई चीज मिलेगी; कल मालूम हो जायगा।

*'जोड़'=खास तौरसे ब्याहके समय पहना जानेवाला कसूमी रंगका रेमशकी धोती-दुपट्टा।

†'चेली'=दुलहिनके पहननेकी कसूमी रंगकी रेशमी साड़ी।

आज अब उससे कुछ भी नहीं सहा जा रहा। घरमें कोई नहीं है, उसके बार-बार एक हूक-सी उठती है—"झूठा, झूठा, झूठा है सब ; क्या होगा इस खेलका ?"

रातको नींद नहीं आई। तड़के ही उसे सुनाई दिया, मोटर-गाड़ी खिड़कीके पाससे निकल गई। शर्मिला सिसकने लगी और अन्तमें रो दी—"हे भगवान, तुम झूठे हो !"

अबसे बीमारी तेजीसे आगे बढ़ने लगी। दुर्लक्षण जिस दिन अत्यन्त प्रबल हो उठे उस दिन शर्मिलाने पतिको अपने पास बुला भेजा। शामका वक्त है, कमरेमें उजाला बहुत क्षीण हो चला है; नर्सको उसने इशारा किया कि वह बाहर चली जाय। पतिको अपने पास बिठाकर हाथ पकड़के बोली—"अपने जीवनमें भगवानसे जो वर मुझे मिला था, वह तुम हो। उसके योग्य शक्ति उन्होंने मुझे नहीं दी ; जितना मेरा बूता था, मैंने किया। त्रुटियाँ काफी हुई हैं मुझसे, मुझे माफ कर दो।"

शशांक कुछ कहना चाहता था, उसे रोककर शर्मिलाने कहा—"नहीं, तुम कुछ मत कहो। ऊर्मीको मैं तुम्हारे हाथ सौंप जाती हूं। वह मेरी अपनी बहन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे, और-भी ज्यादा पाओगे जो मुझसे न पा सके थे। नहीं, चुप रहो तुम, कुछ मत बोलो। मरते वक्त ही मेरा सौभाग्य पूरा हुआ, तुम्हें मैं सुखी देख सकी।"

नर्सने बाहरसे कहा—"डाक्टर साहब आये हैं।"

शर्मिलाने कहा—"ले आओ।

शर्मिलाके एक मामा तरह-तरहके अशास्त्रीय इलाजोंके लिए कमर कसके खड़े हो गये। फिलहाल वे एक संन्यासीकी सेवामें नियुक्त हैं। जब डाकृरोंने कह दिया कि अब कुछ भी करनेको बाकी नहीं, तब वे जिद कर बैठे कि 'हिमालयसे आये हुए बाबाजीकी जड़ीकी परीक्षा करनी ही होगी। तिब्बतकी जड़ीका चूरन फाँककर सेरों दूध पीते जाना, बस; और-कोई झंझट नहीं।'

अनाड़ी चाहे किसी भी तरहका हो, शशांक उसे बरदाश्त न कर सकता था। उसने आपत्ति की। शर्मिलाने कहा—"और कोई नतीजा न सही, कम-से-कम मामाको तसल्ली तो मिलेगी।"

देखते-देखते नतीजा निकलने लगा। साँस लेनेमें जो तकलीफ होती थी वह जाती रही।

सात दिन बीते, पन्द्रह दिन बीते, शर्मिला उठके बैठ गई। डाकृरने कहा—"मौतके धक्केसे ही अकसर शरीर जान हथेलीपर रखके लड़नेको तैयार हो जाया करता है, और आखिरी धक्केमें खुद ही अपने-आपको बचा लेता है।"

शर्मिला बच गई।

फिर वह सोचने लगी, 'यह कैसी आफत है, अब क्या करूं। आखिर जी जाना ही क्या मरनेसे बढ़कर दुखदायी हो जायगा!'

उधर ऊर्मी अपनी चीज-वस्तु समेटकर जानेकी तैयारी कर रही है। यहाँकी पारी उसकी खतम हो गई।

जीजीने उससे आकर कहा—"तू जा नहीं सकेगी।"

"क्यों?"

"हिन्दू-समाजमें क्या बहन-सौतका घर किसीने कभी नहीं सम्हाला ?"

"छि: !"

"लोकनिन्दा ! विधिके विधानसे भी बढ़ जायगी लोगोंके मुँहकी बात !"

उसने शशांकको बुला भेजा । उससे बोली—"चलो, हमलोग नेपाल चले चलें । वहाँके राज-दरबारका तुम्हें काम मिलनेवाला था, कोशिश करनेसे मिल जायगा । उस देशमें सामाजिक कोई बात ही नहीं उठेगी ।"

शर्मिलाने किसीको दुबिधा करनेका मौका ही नहीं दिया । जानेकी तैयारियाँ होने लगीं । ऊर्मी लेकिन अब भी विमर्ष होकर छिपी-छिपी फिरती है ।

शशांकने उससे कहा—"आज अगर तुम मुझे छोड़कर चली जाओ तो मेरी क्या दशा होगी सोच देखो !"

ऊर्मीने कहा—"मुझसे कुछ भी नहीं सोचा जाता । तुम दोनों जो तय करोगे वही होगा ।"

पूरी तैयारियाँ करनेमें कुछ दिन लग गये । उसके बाद वक्त जब बिलकुल करीब आ पहुंचा तो ऊर्मी कहने लगी—"पाँच-सात दिन ठहर जाओ, काकाजीसे कुछ कामकी बात करनी है सो कर आऊँ ।"

ऊर्मी चली गई ।

इसी समय मथुरा बाबू आये शर्मिलाके पास । बोले—

"तुम लोग ठीक वक्तपर ही चले जा रहे हो। तुम्हारे साथ बातचीत पक्की हो जानेके बाद तुरत ही मैंने दफ्तर जाकर शशांकके लिए काम अलग छाँट दिया था। अपने साथ मैंने उनके नफा-नुकसानको नहीं लपेटा। हालमें काम समेटनेकी गरजसे शशांक कई दिनोंसे हिसाब समझ रहा था। देखा गया कि तुम्हारे रुपये बिलकुल ही डूब चुके। ऊपरसे और जो कर्ज चढ़ा हुआ है उसे चुकानेमें शायद अब मकान बेचना पड़ेगा।"

शर्मिलाने पूछा—"सत्यानाश यहाँ तक बढ़ आया? उन्हें मालूम ही नहीं पड़ा!"

मथुरा बाबूने कहा—"सत्यानाश चीज ही ऐसी है जो अकसर अचानक बिजली-सी पड़ती है सिरपर; जिस क्षणमें मारती है उसके पहले क्षण तक कतई मालूम नहीं होने देती। उन्हें मालूम था कि उनके काममें घाटा-ही-घाटा चल रहा है उसी वक्त वे आसानीसे सम्हल सकते थे। लेकिन दुर्बुद्धि और किसे कहते हैं; रोजगारकी गलती झटपट सुधार लेनेकी जल्दबाजीमें कोयलेके बाजारमें तेजी-मन्दी लगाना-खाना शुरू कर दिया। तेजीमें जो खरीदा था, सस्तेमें उसे बेच देना पड़ा। अचानक देखा कि आतिशबाजीकी तरह उसका सब-कुछ जल-उड़ गया, बाकी बची है राख। अब भगवानकी कृपासे नेपालका काम मिल जाय तो चिन्ता दूर हो।"

शर्मिला गरीबीसे नहीं डरती। बल्कि वह समझती है कि तंगीके दिनोंमें पतिके घरमें उसके लिए जगह और भी बढ़ जायगी।

उसे ऐसा विश्वास है कि गरीबीकी कठिनाईको यथासम्भव नरम करके वह दिन काट सकती है। खासकर जेवर-गहने जो बच रहे हैं उनसे कुछ दिन तो बगैर तकलीफके काम चल सकता है। यह बात भी संकोचके साथ उसके मनमें झाँकी मार रही है कि ऊर्मिके साथ ब्याह हो जानेसे उसकी सम्पत्ति भी तो पतिकी हो जायगी। लेकिन सिर्फ जिन्दगी बिता देना ही तो काफी नहीं है। इतने दिनोंसे उसके पतिने अपनी शक्तिसे अपने हाथसे जो सम्पदा पैदा की, जिसकी खातिर अपने हृदयके बहुतसे जबरदस्त हक-दावोंको शर्मिला अपनी इच्छासे बराबर रोकती रही, उन दोनोंके वही सम्मिलित जीवनकी मूर्तिमान आशा आज मरीचिकाकी तरह बिला गई, इस अगौरवने उसकी शानको मिट्टीमें मिला दिया। मन-ही-मन कहने लगी, 'तभी अगर मर जाती तो यह धिक्कार तो न जिन्दा रहता! मेरे भाग्यमें जो था, सो तो हो गया; पर गरीबीके अपमानकी यह मर्मभेदी शून्यता क्या किसी दिन पश्चात्ताप न ला देगी उनके मनमें? जिसके मोहमें चूर होकर उन्होंने ऐसा कर डाला, एक दिन आयेगा जब उनका मन शायद इसके लिए उसे क्षमा न कर सकेगा, उसका दिया हुआ अन्न उन्हें जहर-सा लगेगा। अपने मतवालेपनका नतीजा देखकर वे लज्जित होंगे, पर दोष देंगे मदिराको। अन्तमें अगर ऊर्मीकी सम्पत्तिपर निर्भर रहना ही अनिवार्य हो जाय तो उस आत्मग्लानि और आत्मावमाननाका क्षोभ ऊर्मीको क्षण-क्षणमें जला-जलाकर मारता रहेगा।'

एक दिन शशांक जब हिसाब साफ करनेकी गरजसे मथुरा बाबूके पास पहुंचा, तो अकस्मात उसे मालूम हुआ कि शर्मिलाके सब रुपये कारोबारमें डूब चुके हैं। और यह बात शर्मिलाने अब तक उससे नहीं कही ; मथुरा-दादाके साथ उसने खुद ही समझौता कर-कराके हिसाब साफ कर दिया है।

शशांकको सब बातें याद आने लगीं, नौकरी छोड़नेके बाद उसने एक दिन शर्मिलासे कर्ज लेकर ही रोजगार शुरू किया था और धीरे-धीरे उसे खूब पुख्ता भी कर लिया था। आज फिर बरबाद रोजगारके अन्तमें, उसी शर्मिलाका ही कर्ज सिरपर लादे वह चला है नौकरी करने। इस कर्जके बोझको तो अब वह कभी उतार नहीं सकता। नौकरीकी तनख्वाहसे कर्ज चुकानेका स्वप्न कब किसका पूरा हुआ है ?

नेपाल जानेमें और दसएक दिनकी देर है। कल रात-भर शशांकको नींद नहीं आई। तड़के ही वह भड़भड़ाकर उठ बैठा बिछौनेसे, आईनेके सामनेवाली टेबिलपर अचानक जोरका एक मुक्का मारकर बोल उठा—"नहीं जाऊँगा नेपाल।" कड़ी प्रतिज्ञा कर डाली—"हम दोनों ऊर्मीको साथ लेकर कलकत्तेमें ही रहेंगे, भृकुटि-कुटिल समाजकी क्रूर दृष्टिके सामने ही। और यहीं रहकर टूटे रोजगारको फिरसे गढ़के तैयार करूँगा मैं, इसी कलकत्तेमें बैठकर।"

जो-जो चीजें साथ जायेंगी और जिन-जिनको यहीं छोड़ जाना है, शर्मिला उनकी एक फेहरिश्त बना रही थी, एक कापीपर। इतनेमें पुकार आई—"शर्मिला, शर्मिला!"

झटपट कापी फेंककर शर्मिला पतिके कमरेमें दौड़ी गई। अकस्मात् अनिष्टकी आशंकासे उसने काँपते हुए हृदयसे पूछा—"क्या हुआ ?"

"नहीं जाऊँगा नेपाल, परवाह नहीं समाजकी मुझे। यहीं रहूंगा मैं।"

"क्यों, क्या हुआ क्या ?"

"काम है।"

वही पुरानी बात, 'काम है'। शर्मिलाकी छाती धुकुर-धुकुर करने लगी।

"शर्मी, तुम यह न समझ लेना कि मैं कायर हूं। अपनी जिम्मेदारीको छोड़कर भाग जाऊँ मैं, इतने अधःपतनकी कल्पना कर सकती हो तुम ?"

शर्मिला पास जाकर पतिका हाथ पकड़के बोली—"क्या हुआ है, खुलासा समझा दो मुझे।"

"फिर मैं कर्जदार हो गया तुम्हारा, इस बातको ढकनेकी कोशिश मत करो शर्मी।"

शर्मिलाने कहा—"अच्छा ठीक है।"

शशांकने कहा—"उस दिनकी तरह ही आज फिर कर्ज चुकाने बैठता हूं मैं। जो डुबोया है उसे खींचकर उठाऊँगा ही, मेरी प्रतिज्ञा है, सुन रक्खो। पहले एक दिन जैसे तुमने मुझपर विश्वास किया था, वैसे ही, आज फिर मुझपर विश्वास करो।"

शर्मिलाने पतिकी छातीपर माथा रखकर कहा—"तुम भी मुझपर विश्वास करना। काम समझाते रहना मुझे, अपने लायक

गढ़ लेना मुझे। आजसे ऐसी शिक्षा दो मुझे कि तुम्हारे काममें हाथ बटाने लायक हो जाऊँ मैं।"

बाहरसे आवाज आई—"चिट्ठी।"

ऊर्मीके हाथकी लिखी दो चिट्ठियाँ हैं। एक है शशांकके नाम; और दूसरी शर्मिलाके नाम। शशांककी चिट्ठीमें लिखा है :—

"मैं अभी बम्बईके रास्तेमें हूं। विलायत जा रही हूं। बापूजीकी आखिरी आज्ञाके अनुसार डाक्टरी सीखकर लौटूंगी वहाँसे। छै-सात साल लग जायेंगे शायद। तुम्हारी घर-गृहस्थीमें जाकर मैं काफी तोड़-फोड़ कर आई हूं, इस बीचमें कालका स्रोत अपने हाथसे सब जोड़-जाड़कर ठीक कर देगा। मेरे लिए चिन्ता न करना, तुम्हारे लिए ही चिन्ता रह गई मेरे मनमें।"

शर्मिलाकी चिट्ठीमें था :—

"जीजी, सैकड़ों-हजारों प्रणाम तुम्हारे चरणोंमें। अज्ञानमें अन्धी होकर काफी कसूर किये हैं मैंने; माफ कर देना तुम। मेरी हरकतें तुम्हारी निगाहमें अगर कसूरमें शामिल नहीं, तो उतना ही जानकर ही मैं सुखी हो जाऊँगी। उससे बढ़कर सुखी होनेकी आशा नहीं रखूँगी मनमें। किसमें सुख है इसका ही कौनसा ज्ञान है मुझमें? और सुख अगर न हुआ तो नहीं सही। गलती करनेमें डर लगता है।"

घाटकी बात

पत्थरपर अगर वे घटनाएँ लिखी रहतीं, तो कितने ही दिनोंकी कितनी ही बातें तुम मेरी हर सीढ़ीपर पढ़ सकते। पुरानी बातें अगर सुनना चाहते हो तो इन सीढ़ियोंपर बैठो। मन लगाकर पानीकी लहरोंकी ओर कान लगाये रहो। गुजरे जमानेकी कितनी ही भूली हुई बातें सुनाई देंगी।

मुझे और-एक दिनकी बात याद आ रही है। वह भी ठीक आजका-सा दिन था। कुआरके आनेमें दो-ही-चार दिन बाकी थे। सवेरेके वक्त नवीन शीतऋतुकी धीमी-धीमी हवा सोकर उठे-हुओंकी देहमें नया जीवन ला रही थी। पेड़ोंके पत्तोंको जरा-जरा सुरसुरी-सी आ रही थी।

गंगा ऊपर तक भरी हुई है। मेरी सिर्फ चार सीढ़ियाँ पानीके ऊपर जाग रही हैं। जलके साथ स्थलकी गलबहियाँ हो रही हैं, किनारेपर आमके बागके नीचे जहाँ अरुईका जंगल जम गया है, वहाँ तक गंगाका पानी आ पहुंचा है। नदीके उस मुहानेके पास तीन पुराने पजाये पानीके भीतर उभरे हुए हैं। धीवरोंकी जो नावें किनारेपर बबूलके पेड़ोंसे बँधी थीं, वे सवेरेकी ज्वारके पानीपर तैरती हुई डगमग-डगमग कर रही हैं, चपल-यौवन ज्वारका पानी इतरा-इतराकर उनके दोनों तरफ छप-छप आघात कर रहा है, मधुर परिहाससे मानो उनके कान पकड़कर हिला-हिला जाता है।

भरी गंगाके ऊपर शरद्-प्रभातकी जो धूप पड़ी है, उसका रंग है कच्चे सोने-जैसा, चम्पा फूलके समान। धूपका ऐसा रंग और किसी भी समय नहीं दिखाई देता। बीचकी रेतीपर उगी हुई लम्बी-लम्बी काँसपर धूप पड़ रही है। अभी तक काशके फूल सब खिले नहीं हैं, खिलने शुरू ही हुए हैं।

राम-राम कहते हुए मल्लाहोंने नावें खोल दीं। चिड़ियाँ जैसे उजालेमें पर फैलाकर आनन्दसे नीले आसमानमें उड़ रही हैं, छोटी-छोटी नावें भी वैसे ही छोटे-छोटे पाल चढ़ाकर सूर्यकी किरणोंमें निकल पड़ी हैं। वे चिड़ियों-जैसी ही मालूम देती हैं; मानो राजहंसोंकी तरह पानीमें तैर रही हों, और आनन्दमें आकर दोनों पर आकाशमें फैला दिये हों।

भट्टाचार्यजी ठीक नियमित समयपर पंचपात्र हाथमें लिये स्नान करने आये। स्त्रियाँ भी एक-एक दो-दो करके पानी भरने आईं।

यह बहुत ज्यादा दिनोंकी बात नहीं है। हाँ, तुम लोगोंको बहुत दिनोंकी जरूर मालूम हो सकती है, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह कलकी बात है। मेरे दिन तो गंगाके स्रोतके साथ खेलते-खेलते बह जाते हैं, बहुत दिनोंसे एक जगह पड़ा-पड़ा मैं ऐसा ही देख रहा हूं, इसीलिए समय मुझे बहुत लम्बा नहीं मालूम देता। मेरे दिनकी धूप और रातकी छाया रोज मेरी गंगापर पड़ती है और रोज उसपर से पुछकर मिट जाती है, कहीं भी उनकी छबि नहीं दिखाई देती। इसीलिए यद्यपि मैं देखनेमें वृद्ध जैसा लगता हूं, पर हृदय मेरा हमेशा नया और हरा-भरा रहता है। बरसोंकी पुरानी स्मृतिकी काईके भारसे आच्छन्न

होकर मेरी सूर्य-किरणें मारी नहीं जातीं। हाँ, कभी-कभी एकआध काईका टुकड़ा बहकर आता और देहसे लगकर फिर स्रोतमें बह जाता है। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह काई कुछ है ही नहीं। जहाँ गंगाका स्रोत नहीं पहुंचता, वहाँ मेरे छेदों-दरारोंमें जो लता घास या शैवाल या पौधे उत्पन्न हुए हैं, वे ही मेरे पुराने होनेके गवाह हैं, उन्हींने पुराने कालको स्नेह-पाशमें बाँधकर उसे हमेशाके लिए श्यामल मधुर और नवीन बना रखा है। गंगा प्रतिदिन मेरे पाससे एक-एक सीढ़ी उतरती जा रही है, और मैं भी एक-एक सीढ़ी करके पुराना होता जा रहा हूं।

चक्रवर्ती-घरानेके वह जो वृद्ध-पुरुष स्नान करके रामनामी ओढ़े काँपते हुए माला जपते-जपते घरको लौट रहे हैं, उनकी नानी तब इतनी-सी थीं। मुझे याद है, उसका एक खेल था, वह रोज घीकुवाँरका एक पत्ता गंगामें बहा जाती थी। मेरी दाहनी बाँहके पास एक भँवर-सा था, वहींपर उसका वह पत्ता लगातार घूमा करता था; और वह गागर रखकर खड़ी-खड़ी उसीको देखा करती थी। जब देखा कि कुछ दिन बाद वह लड़की बड़ी हो गई और अपनी एक लड़कीको साथ लेकर पानी भरने आई, उसके बाद वह लड़की भी फिर बड़ी हो गई और अपने साथकी लड़कियोंके पानी उछालकर ऊधम मचानेपर वह भी उन्हें डाटती-डपटती और भले-मानसों-जैसा आचरण करनेकी शिक्षा देती, तब मुझे वही घीकुवाँरकी नाव बहानेकी बात याद आती और बड़ा कुतूहल मालूम होता।

जो बात कहना चाहता हूं वह आती ही नहीं। एक बात उठाता हूं, तब तक स्रोतमें दूसरी बात बह आती है। बातें आती हैं, चली जाती हैं; उन्हें थामकर नहीं रख सकता। एक-एक कहानी उस घीकुवाँरकी नावकी तरह भँवरमें पड़कर बिना आराम किये लौट-लौट आती है। इसी तरह आज एक कहानी अपना बोझ लेकर मेरे आस-पास घूम-फिर रही है; अब डूबी कि अब डूबी! उस पत्तेकी तरह ही वह छोटी-सी है, उसमें ज्यादा कुछ नहीं है, दो खेलके फूल हैं। उसे डूबते देखकर कोमल-हृदय बालिका सिर्फ एक लम्बी साँस खींचकर घर लौट जायगी।

मन्दिरके पास, जहाँ वह गुसाँइयोंकी गोशालाका बाँसका घेरा देख रहे हो, वहाँ एक बबूलका पेड़ था। उसीके नीचे हफ्तेमें एक रोज पैंठ लगती थी। तब गुसाँइयोंका वहाँ घर-द्वार नहीं बना था। जहाँ अभी उनका चंडी-मंडप है वहाँ सिर्फ एक फूसकी झोंपड़ी थी।

यह बरगदका पेड़ जो आज मेरी पसलियोंमें हाथ फैलाकर, विकट और लम्बी कठिन उँगलियों-जैसी अपनी जड़ोंसे मेरे विदीर्ण पाषाण-प्राणको मुट्ठीमें दबाये हुए है, यह वृक्ष तब इतना-सा छोटा पौधा था। अपनी हरी-हरी नई पत्तियोंको लिये सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। घाम पड़नेपर उसकी उन पत्तियोंकी छाँह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती, इसकी नई जड़ें बच्चोंकी उंगलियोंकी तरह मेरी छातीके पास चुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक पत्ती भी तोड़ता, तो मुझे पीड़ होती।

मेरी उमर यद्यपि काफी हो चुकी थी, फिर भी मैं सीधा था।

आज मैं पीठकी रीढ़ टूट जानेसे अष्टवक्रकी तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूं और गहरी त्रिवलि-रेखाओंकी तरह मेरे शरीरपर हजारों जगह दरारें भी पड़ गई हैं, मेरे भीतर दुनिया-भरके मेंढ़क जाड़ेके दिनोंमें लम्बी नींद सोनेकी तैयारियाँ कर रहे हैं; पर उन दिनों मेरी ऐसी दशा न थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजामें बाहरकी तरफ दो ईंटोंकी कमी थी, उस खोहमें एक चिड़ियाने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती और मछलीकी पूँछकी तरह अपनी डबल पूँछको दो-चार बार जल्दी-जल्दी नचाकर सीटी देकर आसमानमें उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुमके घाटपर आनेका समय हो गया।

जिस लड़कीकी बात कह रहा हूं, घाटकी और-और लड़कियाँ उसे कुसुम कहा करती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानीपर जब कुसुमकी छोटी-सी छाया पड़ती, तो मेरे मनमें आता कि किसी तरह उस छायाको पकड़ रखूँ। उसमें कुछ ऐसी ही मिठास थी। वह जब मेरे ऊपर पैर रखती और उसके दोनों पैरोंके छड़े बजने लगते तब मेरी दरारोंके घास-पौधे मानो पुलकित हो उठते। कुसुम बहुत ज्यादा खेलती-इतराती हो या हँसी-मसखरी करती हो, सो बात नहीं; तो भी ताज्जुबकी बात यह थी कि उसकी जितनी भी सखी-सहेलियाँ थीं, उनमें से उस-जैसी कोई भी न थी। चंचल लड़कियोंका उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे कुसी कहती, तो कोई खुसी और कोई राक्षसी! उसकी मा उसे कसूमी कहती। जब देखो तब कुसुम पानीके किनारे ही बैठी मिलती। पानीके साथ उसके हृदयका

मानो कोई गहरा नाता हो। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता।

कुछ दिन बाद कुसुमको फिर घाटपर नहीं देखा। भुवना और स्वर्णा घाटपर रोतीं। एक दिन सुननेमें आया कि उनकी कुसी-खुसी-राक्षसीको कोई ससुराल ले गया है। वहाँ सब नये आदमी हैं, नया घर-द्वार है, और नया ही रास्ता और घाट है। पानीके कमलको मानों कोई जमीनपर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे कुसुमकी बात एक तरहसे भूल रहा था। साल-भर बीत गया। घाटकी लड़कियाँ कुसुमकी बात भी ऐसी-कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन शामके वक्त बहुत दिनोंके परिचित पैरोंके स्पर्शसे सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ, शायद कुसुमके पैर हैं ये। वे ही तो हैं, पर उन पैरोंमें अब छड़े नहीं बजते। उन पैरोंमें वह संगीत नहीं है। कुसुमके पैरोंका स्पर्श और छड़ोंकी आवाज, हमेशासे दोनोंको एकसाथ अनुभव करता आया हूं; आज अचानक उन छड़ोंकी आवाज न सुनकर संध्या-समयका जल-कल्लोल कैसा-तो उदास-सा सुनाई पड़ने लगा, आमके बागमें पत्तोंको खड़खड़ाती हुई हवा कैसा-तो हाहाकार-सा करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेशमें नौकरी करता था; दो-एक दिनके सिवा पतिसे उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। चिट्ठीसे वैधव्यका समाचार पाकर आठ बरसकी उमरमें माथेका सिन्दूर पोंछकर, शरीरके गहने उतार कर, कुसुम फिर अपने देशमें इसी गंगाके किनारे लौट आई। पर उसकी संगिनियोंमेंसे अब यहाँ कोई भी नहीं रह गई। भुवना, स्वर्णा, अमला सब सासका घर सम्हालने चली गई हैं।

सिर्फ शारदा है; पर सुनता हूं, अगहनमें उसका भी व्याह हो जायगा। फिर वह बिलकुल अकेली ही रह जायगी।

जब वह अपने घुटनोंपर सर रखकर मेरी सीढ़ियोंपर चुपचाप बैठी रहती, तब मुझे ऐसा मालूम पड़ता कि मानो नदीकी लहरें सब मिलकर हाथ उठाकर उसे 'कुसी-खुसी-राक्षसी' कहकर पुकार रही हों।

बरसात शुरू होते ही गंगा जैसे देखते-देखते भर उठती है, कुसुम भी वैसे ही देखते-देखते प्रतिदिन सौन्दर्यसे यौवनसे भरने लगी। मगर उसके शान्त स्वभाव, करुण चेहरे और मैले-मोटे कपड़ोंने उसके यौवनपर ऐसा एक छायाका परदा डाल दिया है कि उसका वह खिला हुआ रूप सबके देखनेमें नहीं आता। इसपर किसीकी दृष्टि ही नहीं जाती कि कुसुम अब बड़ी हो गई है। कम-से-कम मेरी तो नहीं जाती। मैंने कुसुमको उस बालिकासे बड़ी कभी नहीं देखा जिसे शुरूसे देखता आया हूं। उसके छड़े तो पाँवोंमें न थे, पर जब वह चलती तो मुझे छड़ोंकी आवाज जरूर सुनाई देती। इसी तरह दस साल बीत गये, गाँवके लोगोंको कुछ मालूम ही न हुआ।

अपने चारों तरफ आज जैसा दिन देख रहा हूं, उस साल भी भादोंके अन्तमें ऐसा ही एक दिन आया था। तुम्हारी परदादियोंने भी उस दिन सवेरे उठकर आजकी तरह ही मधुर सूर्यका मीठा उजाला देखा था। वे जब इतना लम्बा घूंघट खींचकर गागर उठाकर मेरे ऊपर सवेरेके सूर्य-प्रकाशको और-भी प्रकाशमय करनेके लिए, पेड़ोंमें होकर गाँवकी ऊँची-नीची सड़कोंपरसे बातें

करती हुई चली आती थीं, तब तुम्हारे आजके दिनकी सम्भावना भी उनके मनके एक कोनेमें न उठती थी। आज तुम जैसे उनके बारेमें नहीं सोच सकतीं कि तुम्हारी दादियाँ भी सचमुच एक दिन खेलती-फिरती थीं—आजका दिन जैसा सत्य है, जैसा जीता-जागता है, वह दिन भी ऐसा ही सत्य था—तुम्हारी तरह करुण हृदय लेकर सुखमें दुःखमें वे भी तुम्हारी ही तरह डगमगाती हुई झूली हैं, वैसे ही आजका यह शरत्‌का दिन—उनसे रहित, उनके सुख-दुःखकी स्मृतिके लेशमात्रसे रहित आजका यह शरदृतुके सूर्य-किरणोंका आनन्दपूर्ण सौन्दर्य—उनकी कल्पनाके सामने उससे भी अधिक अगोचर था।

उस दिन भोरसे ही उत्तरकी पहली हवा मन्द-मन्द बहती हुई खिले हुए बबूलके फूलोंमें से एकआध उड़ाकर मेरे ऊपर फेंक रही थी। मेरे पत्थरपर थोड़ी-थोड़ी ओसकी बूंदें पड़ी हुई थीं। उस दिन सवेरे न-जाने कहाँसे सौम्य और उज्ज्वल चेहरेवाला, गोरे बदन और लम्बे कद्का एक नवीन संन्यासी आया; और मेरे सामनेवाले उस शिव-मन्दिरमें ठहर गया। संन्यासीके आनेकी बात गाँव-भरमें फैल गई। स्त्रियाँ अपनी-अपनी गागर रखकर बाबाजीको प्रणाम करनेके लिए मन्दिरमें जमा हो गईं।

मन्दिरमें भीड़ दिनों-दिन बढ़ने लगी। एक तो संन्यासी, दूसरे अनुपम उनका रूप, और उसपर वे किसीकी अवहेलना नहीं करते। बच्चोंको गोदमें बिठा लेते और माताओंसे घरके काम-धन्धोंकी बातें पूछते। स्त्री-समाजमें थोड़े ही दिनोंमें उनकी बहुत ज्यादा प्रतिष्ठा हो गई, उनमें वे पुजने लगे। उनके पास

पुरुष भी बहुत आते। किसी दिन वे भागवत पढ़ते, किसी दिन भगवद्गीताकी व्याख्या करते, किसी दिन मन्दिरमें बैठकर तरह-तरहकी शास्त्र-चर्चा करते। उनके पास कोई उपदेश सुनने आता तो कोई मन्त्र लेने; और कोई रोगकी दवा पूछने। उनके रूपका क्या पूछना! जान पड़ता, मानो साक्षात् महादेव ही मनुष्यका शरीर धरकर अपने मन्दिरमें आ बिराजे हों!

संन्यासी प्रतिदिन तड़के ही सूर्योदयसे पहले शुकतारेको सामने रखकर गंगाके पानीमें गले तक डूबकर धीर-गम्भीर स्वरमें संध्या-वन्दन करते; और तब मुझे पानीकी तरंगोंका कलकल शब्द न सुनाई देता। उनके उस कण्ठस्वरको सुनते-सुनते प्रतिदिन गंगाके पूरब-किनारेका आकाश गुलाबी हो उठता, बादलोंके किनारे-किनारे अरुण रंगकी रेखाएँ पड़ जातीं, अन्धकार मानो खिलनेवाली कलीके ऊपरकी पपड़ीकी तरह फटकर चारों तरफ झुक जाता और आकाश-सरोवरपर ऊषाकी लाल आभा थोड़ी-थोड़ी करके निकल आती। मुझे ऐसा लगता, मानो यह महापुरुष गंगाके पानीमें खड़ा होकर पूरबकी ओर दृष्टि किये जिस महामंत्रको पढ़ता जाता, उसके एक-एक शब्दके उच्चारणके साथ-साथ निशीथ रजनीकी माया दूर होती जाती; चाँद और तारे पश्चिमको उतरते जाते और सूर्य पूर्वाकाशमें उदित होता रहता; और इस तरह दुनियाका दृश्यपट बदल जाता। यह है कौन मायावी! गंगा-स्नान करके संन्यासी जब होम-शिखाके समान अपने लम्बे गोरे पुण्य-शरीरको लिये पानीसे निकलता और उसके जटाजूटसे

पानी झरता रहता, तब नये सूरजकी किरणें उसके सारे अंगोंपर पड़कर चमकती रहतीं।

इस तरह और-भी कई महीने बीत गये। चैतके महीनेमें सूर्य-ग्रहणके समय हजारों आदमी गंगा नहाने आये। बबूलके पेड़ोंके नीचे बड़ी-भारी पैंठ लगी। इस मौकेपर संन्यासीके दर्शनके लिए भी बहुतसे आदमी आये। जिस गाँवमें कुसुमकी ससुराल थी, वहाँसे भी बहुत-सी औरतें आईं।

सवेरेका वक्त था; मेरी सीढ़ियोंपर बैठे संन्यासी जप कर रहे थे। उन्हें देखते ही अचानक एक स्त्री अपनी साथिनका कंधा मसककर बोल उठी—"अरी ओ, ये तो अपनी कुसुमके पति मालूम होते हैं!"

एक स्त्री अपने घूँघटको जरा ऊँचा करके कहने लगी—"अरी हाँ री, ये तो हमारे चटर्जियोंके घरके छोटे बाबू हैं!" और एक जो थी, वह घूँघटका इतना आडम्बर न रखती थी, उसने कहा—"हाँ री, वैसी ही नाक है, वैसी ही आँखें हैं!"

चौथीने संन्यासीकी तरफ बिना देखे ही गहरी साँस लेकर गागरसे पानीको धक्का देकर कहा—"हाय, वह अब कहाँ है! अब क्या वो कभी आयेगा? कुसुमके ऐसे भाग्य कहाँ!"

तब फिर किसीने कहा—"उनके इतनी डाढ़ी नहीं थी।" कोई बोली—"वे ऐसे दुबले नहीं थे।" कोई कहने लगी—"वे इतने लम्बे कहाँ थे?"

इस तरह बातका लगभग फैसला-सा हो गया; और चर्चा जहाँ-की-तहाँ दब गई।

गाँवके और-सबोंने संन्यासीको देखा था, सिर्फ कुसुमने नहीं देखा। ज्यादा आदमियोंका समागम होते रहनेसे कुसुमने मेरे पास आना बिलकुल छोड़ ही दिया। एक दिन संध्याके बाद पूनोंका चाँद आकाशमें उठते देख शायद हम दोनोंका पुराना सम्बन्ध उसे याद आ गया।

उस समय घाटपर और-कोई नहीं था। झींगुर अपनी 'झीं-झीं' की तान अलाप रहे थे। मन्दिरके घंटा-घड़ियालोंकी ध्वनि भी कुछ देर पहले बन्द हो गई थी, उसकी आखिरी गूंजकी तरंगें क्षीणतर होकर उस पारके छायामय पेड़ोंकी कतारमें जाकर छायाकी तरह विलीन हो गईं। धीरे-धीरे शुभ्र चाँदनीसे जल-स्थल आकाश भर गया। मेरी सीढ़ियोंपर ज्वारका पानी छप-छप करने लगा। कुसुम आई; और मेरे ऊपर अपनी छाया डालकर बैठ गई। हवा थम चुकी थी। पेड़-पौधे भी चुपकी साध गये। कुसुमके सामने है गंगाकी छातीपर बेरोक-टोक फैली हुई चाँदनी। अँधेरा उसके पीछे, आस-पास, पेड़-पत्तियोंमें, मन्दिरकी छायामें, टूटे-फूटे मकानोंकी भीतोंपर, तालाबके किनारे, ताड़के पेड़ोंके नीचे अपनी देह और मुँह छिपाये दुबककर बैठ गया है। छतिवनके पेड़ोंकी डालियोंपर चमगादड़ लटक रहे हैं। बस्तीके पास गीदड़ोंकी जोरोंकी चीख उठी और थम गई।

संन्यासी धीरे-धीरे मन्दिरके भीतरसे बाहर निकल आये। घाटपर आकर दो-एक सीढ़ी उतरते ही उनकी दृष्टि कुसुमपर पड़ी। अकेली स्त्रीको ऐसे एकान्त स्थानमें बैठी देख वे लौटना ही चाहते थे, इतनेमें सहसा कुसुमने मुँह उठाकर पीछेकी ओर देखा।

उसके सिरका कपड़ा पीछेको खिसक गया। खिलते हुए फूलपर जैसे चाँदनी पड़ती है, मुँह उठाते ही कुसुमके मुँहपर वैसे ही चाँदनी आ पड़ी। उसी क्षण दोनोंने एक-दूसरेको देखा, मानो जान-पहचान हो गई। ऐसा लगा जैसे पहले जनमकी जान-पहचान हो।

सिरके ऊपरसे उल्लू बोलता हुआ उड़ गया। उस आवाजसे चौंककर कुसुमने होश सम्हाला, सिरका कपड़ा खींच लिया; और उठकर संन्यासीके पैरोंके पास जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

संन्यासीने आशीर्वाद देकर उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"कुसुम।"

उस रातको फिर कोई बात न हुई। कुसुमका घर पास ही था; वह धीरे-धीरे अपने घर चली गई। उस रातको संन्यासी बहुत देर तक मेरी सीढ़ियोंपर बैठे रहे। अन्तमें पूरबका चाँद जब पश्चिमको पहुंच गया, संन्यासीके पीछेकी छाया जब सामने आ गई, तब वे उठकर मन्दिरमें चले गये।

उसके दूसरे दिनसे मैं बराबर देखा करता, कुसुम रोज आती और संन्यासीकी पदधूलि ले जाती। संन्यासी जब शास्त्र-व्याख्या करते, तब वह एक तरफ खड़ी होकर सब सुनती। संन्यासी प्रातःसंध्या कर चुकनेके बाद कुसुमको बुलाकर उसे धर्मकी बातें सुनाते। सब बातें क्या कुसुम समझ सकती थी? लेकिन वह खूब मन लगाकर चुपचाप बैठी-बैठी सब सुना करती। संन्यासी उसे जैसा उपदेश देते, वह हूबहू वैसे ही उसका पालन करती।

रोजमर्रा वह मन्दिरका काम करती, देव-सेवामें जरा भी आलस्य नहीं करती, पूजाके लिए फूल चुनती, गंगासे पानी भरकर मन्दिर धोती।

संन्यासी उसे जितनी भी बातें बताते, मेरी सीढ़ियोंपर बैठकर वह उन्हींको सोचा करती। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि मानो दूर तक फैल गई; उसने अब तक जो देखा नहीं था, अब वह उसे देखने लगी; जो पहले नहीं सुना था, उसे अब वह सुनने लगी। उसके प्रशान्त चेहरेपर जो एक म्लान छाया थी, वह दूर हो गई। प्रभात-सूर्यके प्रकाशमें जब वह भक्तिभावसे संन्यासीके पैरोंके पास आकर लोट जाती, तब वह देवतापर चढ़ाये हुए ओससे धुले पूजाके फूलके समान दीखती; एक निर्मल प्रसन्नता उसके सारे शरीरको प्रकाशमय बना देती।

शीतऋतुके आखिरी दिन थे। ठण्डी-ठण्डी हवाके साथ किसी-किसी दिन संध्याके समय सहसा दक्षिणसे वसन्तकी हवा आ मिलती है, और तब आकाशसे ओसका भाव बिलकुल दूर हो जाता। बहुत दिन बाद गाँवमें बंसी बजने लगी और गीतकी ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मल्लाह लोग स्रोतमें नाव बहाकर डाँड़ खेना बन्द करके श्याम-कन्हैयाके गीत गाने लगे हैं। अचानक चिड़ियोंने इस डालीसे उस डालीपर फुदक-फुदककर परम उल्लाससे उत्तर-प्रत्युत्तर करना शुरू कर दिया। ऋतु अब ऐसी ही आ गई है।

वसन्तकी हवा लगनेसे मेरे पाषाण-हृदयके भीतर भी मानो कुछ-कुछ यौवनका सञ्चार हो उठा। मेरे हृदयके भीतरके उस

नवयौवनोच्छ्वासको आकर्षित करके ही मानो मेरी लताएँ और घास-पौधे देखते-देखते फूलोंसे लदे जा रहे हैं। इस समय, कुसुम क्यों नहीं दिखाई देती? कुछ दिनसे वह मन्दिरमें भी नहीं आती, संन्यासीके पास भी उसे नहीं देखता।

इस बीचमें हो क्या गया, मैं कुछ समझ न सका।

कुछ दिन बाद, एक दिन संध्याके समय मेरी ही सीढ़ियोंपर संन्यासीके साथ कुसुमकी भेंट हुई।

कुसुमने सिर झुकाकर कहा—"प्रभु, आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ, तुम दिखाई क्यों नहीं देतीं? आजकल देव-सेवामें तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रही हो?"

कुसुम चुपचाप खड़ी रही।

"मुझसे तुम अपने मनकी बात खोलकर कहो।"

कुसुमने मुँह फेरकर कहा—"प्रभु, मैं पापिन हूं, इसीलिए ऐसी लापरवाही हो रही है मुझसे।"

संन्यासीने अत्यन्त स्नेह-पूर्ण स्वरमें कहा—"कुसुम, तुम्हारे हृदयमें अशान्ति पैदा हो गई है, मैं यह समझ रहा हूं।"

कुसुम मानो चौंक उठी, उसने शायद समझा कि संन्यासीने न-जाने कितना समझ लिया होगा! उसकी आँखें धीरे-धीरे डबडबा आईं, वह वहींपर बैठ गई; और आँचलसे मुँह ढककर सीढ़ीपर संन्यासीके पैरोंके पास बैठी-बैठी रोने लगी।

संन्यासीने कुछ पीछे हटकर धीरेसे कहा—"अपनी अशान्तिकी बात तुम मुझसे साफ-साफ कहो, मैं तुम्हें शान्तिका मार्ग बताऊँगा।"

कुसुमने अटल भक्तिके स्वरमें कहना शुरू किया; लेकिन बीच-बीचमें रुक-रुक जाती, कहीं-कहीं बात ही न सूझती, कहने लगी—"आपकी आज्ञा है तो मैं जरूर कहूंगी। पर, मैं अच्छी तरह कह न सकूँगी, लेकिन आप तो शायद मन-ही-मन सब-कुछ समझ रहे होंगे। प्रभु, मैं एक जनेको देवताके समान भक्ति करती थी, मैं उनकी पूजा करती थी, उस आनन्दसे मेरा हृदय भर गया था। एक दिन रातको स्वप्नमें देखा, मानो वे मेरे हृदयके स्वामी हैं, न-जाने कहाँ एक बकुल-वनमें बैठकर अपने बाएँ हाथमें मेरा दाहना हाथ लिये मुझे वे प्रेमकी बातें सुना रहे हैं। यह बात मुझे जरा भी असम्भव या आश्चर्यकी नहीं मालूम हुई। सपना टूट गया, पर उसका आवेश न गया। उसके दूसरे दिन जब उन्हें देखा, तो मैं उन्हें पहले-जैसा न देख सकी। मेरे मनमें बार-बार उसी सपनेकी तसवीर नाचने लगी; डरसे मैं दूर भाग गई, पर वह तसवीर मेरे साथ-ही-साथ रही। तभीसे मेरे हृदयकी अशान्ति दूर नहीं हो रही प्रभो, मेरा सब-कुछ अन्धकारमय हो गया है।"

जब कुसुम आँसू पोंछती हुई बात कह रही थी, तब मैं महसूस कर रहा था कि संन्यासीने अपने दाहने पैरसे मेरा पत्थर जोरसे दबा रखा है।

कुसुमकी बात खतम होनेपर संन्यासीने कहा—"जिसे तुमने सपनेमें देखा था वह कौन था बताओ?"

कुसुमने हाथ जोड़कर कहा—"सो मैं नहीं बता सकूँगी।"

संन्यासीने कहा—"तुम्हारी भलाईके लिए ही पूछ रहा हूं; वह कौन है, साफ-साफ बताओ?"

कुसुमने अपने कोमल ओठोंको जोरोंसे दबाकर, हाथ जोड़कर कहा—"बताना ही पड़ेगा ?"

संन्यासीने कहा—"हाँ, बताना ही पड़ेगा ।"

कुसुम उसी दम बोल उठी—"तुम्हीं तो थे, प्रभु !"

कुसुमके ये अपने ही शब्द ज्यों ही उसके कानोंमें पड़े, त्यों ही वह मूर्छित होकर मेरी गोदमें गिर पड़ी। संन्यासी पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहे ।

बेहोशी दूर होते ही कुसुम उठकर बैठ गई; तब संन्यासीने धीरे-धीरे कहा—"तुमने मेरी सभी बातें पालन की हैं; और भी एक बात पालन करनी होगी। मैं आज ही यहाँसे जा रहा हूं; मेरे साथ अब तुम्हारी कभी भी भेंट न हो सकेगी। मुझे तुम भूल जाओ। बताओ, इतनी तपस्या करोगी ?"

कुसुम उठकर खड़ी हो गई; और संन्यासीके मुँहकी ओर देखकर धीर-स्वरमें बोली—"प्रभो, ऐसा ही होगा ।"

संन्यासीने कहा—"तो मैं जाता हूं ।"

कुसुमने और-कुछ न कहके उन्हें प्रणाम किया, उनके पैरोंकी धूल सिरसे लगाई। संन्यासी चले गये ।

कुसुमने कहा—"वे आज्ञा दे गये हैं, उन्हें भूलना होगा ।" कहती हुई वह धीरे-धीरे गंगाके पानीमें उतरी ।

बचपनसे उसने इसी पानीके किनारे दिन बिताये हैं, अन्तिमके समय यह पानी अगर हाथ बढ़ाकर उसे गोदमें न लेगा तो और कौन लेगा ? चाँद अस्त हो गया, रात्रि घोर अन्धकारमय हो गई। पानीमें एक आवाज-सी सुनाई पड़ी, और कुछ भी समझमें नहीं

आया। अन्धकारमें हवा सनसनाने लगी। हवाने शायद यह सोचकर कि किसीको कुछ दीख न जाय, मुँहसे फूंककर आकाशके तारोंको बुझा देना चाहा।

मेरी गोदमें जो खेला करती थी, वह आज अपना खेल खतम करके मेरी गोदसे खिसक गई, और मैं जान भी न पाया।

कंकाल

हम तीनों बचपनके साथी जिस कमरेमें सोते थे, उसके बगलवाले कमरेमें दीवारपर एक नर-कंकाल टँगा रहता था। रातको हवासे उसकी हड्डियाँ खड़खड़ाया करती थीं। दिनमें हमें उन हड्डियोंको हिलाना पड़ता था; क्योंकि हमलोग तब पंडितजीसे 'मेघनाद-वध' काव्य और कैम्बेल स्कूलके एक विद्यार्थीसे अस्थिविद्या पढ़ा करते थे। हमारे बुजुर्ग चाहते थे कि हमलोगोंको वे यकायक सर्वविद्यामें पारदर्शी कर डालें। उनका वह इरादा कहाँ तक पूरा हुआ, यह बात जो हमें जानते हैं उनके सामने प्रकट करना फिजूल है, और जो नहीं जानते उनसे छिपाना ही अच्छा है।

उसके बाद, बहुत समय बीत चुका है। इस बीचमें हमारे घरसे कंकाल और हमलोगोंके दिमागसे अस्थि-विद्या निकलकर न-जाने कहाँ चली गई, कुछ पता नहीं।

थोड़े दिन हुए, एक दिन रातको किसी कारणसे और-कहीं जगह न मिलनेसे मुझे उसी कमरेमें सोना पड़ा जिसमें किसी जमानेमें कंकाल था। आदत न होनेसे नींद न आई। करवट बदलते-बदलते गिरजाकी घड़ीमें बड़े-बड़े घंटे लगभग सभी बज गये। इतनेमें घरके एक कोनेमें जो तेलका दीआ जल रहा था वह भी पाँचेक मिनट बुत-बुत करके बिलकुल ही बुझ गया। इससे कुछ पहले हमारे घर दो-एक मौत हो चुकी थी। इसीसे इस दीआके बुझते ही मौतकी बात याद आ गई। मालूम हुआ, यह जो आधी रातके वक्त एक दीपशिखा चिरअन्धकारमें विला गई, प्रकृतिके लिए जैसी यह है वैसी ही मनुष्यकी छोटी-छोटी प्राणशिखाएँ हैं, जो कभी दिनमें और कभी रातमें अचानक बुझकर हमारी याददाश्तसे सदाके लिए मिट जाती हैं।

क्रमशः उस कंकालकी बात याद आ गई। उसकी जीवित अवस्थाके विषयमें कल्पना करते-करते सहसा ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई चेतन पदार्थ अन्धकारमय घरमें दीवार टटोलता हुआ मेरी मशहरीके चारों तरफ घूम रहा हो। उसकी घनी-घनी साँस मुझे साफ-साफ सुनाई देने लगी। ऐसा लगा जैसे वह खोई हुई चीज ढूंढ़ रहा हो, वह मिल नहीं रही हो; और तेजीके साथ उसके लिए घर-भरमें फिर रहा हो। मैंने निश्चित समझ लिया कि यह सब-कुछ मेरे निद्राहीन गरमाये हुए मस्तिष्ककी कल्पना है। और मेरे ही माथेमें भन्नाता हुआ जो खूब दौड़ रहा है, वही पैरोंकी आहट-जैसा सुनाई दे रहा है। मगर फिर

भी डरके मारे रोंगटे खड़े हो उठे। इस फजूलके डरको जबरदस्ती दूर करनेके लिए मैं बोल उठा—"कौन है ?"

पैरोंकी आहट मेरी मशहरीके पास आकर थम गई, और एक जवाब सुन पड़ा—"मैं हूं। मेरा वह कंकाल कहाँ गया, उसे ढूंढ़ने आई हूं !"

मैंने सोचा कि अपनी काल्पनिक सृष्टिके आगे डरना-डराना कुछ मानी नहीं रखता; और गाव-तकियेसे जोरसे चिपटकर मैंने चिर-परिचितकी तरह सहज स्वरमें कहा—"वाह, आधी रातके वक्त काम तो खूब ढूँढ़ निकाला है ! अब उस कंकालसे तुम्हें क्या मतलब ?"

अँधेरेमें, मशहरीके बहुत ही पास आकर उसने कहा—"खूब कहा ! अरे, मेरी छातीकी हड्डियाँ तो उसीमें थीं ! मेरा छब्बीस वर्षका यौवन तो उसीके चारों ओर विकसित हुआ था ! एक बार देखनेकी तबीयत नहीं होती ?"

मैंने उसी वक्त कहा—"हाँ, बात तो ठीक है। तो तुम ढूंढ़ो, जाओ। मैं जरा सोनेकी कोशिश करूं।"

उसने कहा—"तुम अकेले ही हो क्या ? तो जरा बैठ जाऊँ; जरा गप-शप होने दो। आजसे पैंतीस साल पहले मैं भी आदमियोंके पास बैठकर आदमियोंकी तरह गप-शप किया करती थी। ये पैंतीस साल मैंने सिर्फ श्मशानकी हवामें हू-हू करते हुए बिताये हैं। आज तुम्हारे पास बैठकर, और एक बार, आदमियोंकी तरह गप-शप कर लूं।"

मुझे ऐसा लगा जैसे मेरी मशहरीके पास आकर कोई बैठ गई।

और कोई चारा न देख मैंने जरा उत्साहके साथ ही कहा—"हाँ, यही ठीक है। ऐसा कोई किस्सा छेड़ो जिससे नवीयत खुश हो जाय।"

उसने कहा—"सबसे बढ़कर मजेका किस्सा सुनना चाहते हो तो मैं अपनी जिन्दगीका किस्सा सुनाती हूं, सुनो!"

गिरजेकी घड़ीमें टन-टन दो बजे। वह कहने लगी :—"जब मैं मनुष्य थी और छोटी थी, तब एक आदमीसे मैं जमकी तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछलीको काँटेमें फँसा लेनेपर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसी ही तड़पती थी। मुझे तब ऐसा लगा जैसे कोई एक बिलकुल अपरिचित आदमी काँटेमें फँसाकर स्नेह-जलसे भरे मेरे जन्म-जलाशयसे मुझे खींचे लिये जा रहा हो, किसी तरह उसके हाथसे छुटकारा नहीं मिलनेका। ब्याहके दो महीने बाद ही मेरे पतिकी मृत्यु हो गई। घरवालों और नाते-रिश्तेदारोंने मेरी तरफसे बहुत-कुछ शोक-विलाप किया। मेरे ससुरने बहुतसे लक्षण मिलाकर साससे कहा, शास्त्रोंमें जिसे विष-कन्या कहा है, मैं वही हूं। यह बात मुझे अभी तक बिलकुल स्पष्ट याद है। सुनते हो, कहानी कैसी लग रही है?"

मैंने कहा—"अच्छी है, कहानीका आरम्भ तो बड़े मजेका है!"

"तो सुनो। आनन्दसे मायके लौट आई। क्रमशः उमर बढ़ने लगी। लोग मुझसे छिपाते थे, पर मैं खूब अच्छी तरह जानती थी कि मुझ-जैसी रूपवती जहाँ-तहाँ नहीं मिलती। क्यों, तुम्हारी क्या राय है?"

"हो सकता है। लेकिन मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

मेरा जवाब सुनते ही वह ठहाका मारकर हँस पड़ी। कहने लगी :—

देखा नहीं! क्यों? मेरा वह कंकाल! हि-हि-हि-हि, मैं तुमसे मजाक कर रही हूं! तुम्हारे सामने मैं कैसे साबित करूँ कि उन दोनों आँखोंकी खोखली हड्डियोंके अन्दर कमान-सी खिंची हुई काली भौंरा-सी बड़ी-बड़ी दो आँखें थीं; और उन रंगीन ओठोंपर जो मीठी-मीठी मुसकान थी उसकी अब इन उघड़े हुए दाँतोंकी विकट हँसीके साथ किसी तरह तुलना ही नहीं हो सकती! मैं कैसे समझाऊँ कि उन्हीं इनी-गिनी लम्बी सूखी हड्डियोंके ऊपर इतना लालित्य था, यौवनकी इतनी कठिन-कोमल सुघड़ परिपूर्णता प्रतिदिन खिलती रहती थी कि तुमसे कहनेमें मुझे हँसी भी आती है, और क्रोध भी। मेरे उस शरीरके कंकालसे अस्थि-विद्या सीखी जा सकती है, यह बात उस जमानेके बड़े-बड़े डाक्टरोंके भी दिमागमें न आती थी। मुझे अच्छी तरह याद है, एक डाक्टरने अपने एक खास मित्रसे मुझे कनक-चम्पा बताया था। उसके मानी यह थे कि दुनियाके और-सब आदमी अस्थि-विद्या और शरीरतत्त्वके दृष्टान्त बन सकते हैं, सिर्फ मैं ही एक ऐसी हूं कि जिसे खुशबूदार खूबसूरत फूलके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। कनक-चम्पाके भीतर क्या कोई कंकाल होता है?

मैं जब चलती, तो मुझे ऐसा लगता कि हीरेको हिलानेसे उसके चारों ओर जैसे प्रकाश चमचमाता है, मेरी देहके जरासे हिलने-डुलनेमें वैसी ही सौन्दर्यकी चमक मानो अनेक स्वाभाविक

हिल्लोलोंमें चारों ओर बिखरी पड़ती हो। कभी-कभी मैं बहुत देर तक अपने हाथ आप देखा करती; देखती, संसारके समस्त उद्धत पौरुषके मुँहमें लगाम डालकर मधुरतासे उन्हें वशमें कर सकते थे, ऐसे हाथ थे वे! सुभद्रा जब अर्जुनको लेकर बड़े दर्पके साथ अपने विजय-रथको आश्चर्य-चकित तीन लोकके बीचमें होकर चला ले गई थीं, तब शायद उनके ऐसी ही दो अस्थूल सुडौल भुजाएँ, गुलाबी हथेलियाँ और लावण्यशिखाके समान उंगलियाँ थीं!

पर हाय, मेरे उस निर्लज्ज, निरावरण, निराभरण, चिरवृद्ध कंकालने तुम्हारे सामने झूठी गवाही दी है! मैं तब बेबस थी, कुछ बोल न सकती थी; इसीलिए संसार-भरमें मेरा सबसे ज्यादा क्रोध तुम्हींपर है। ऐसी मनमें आती है कि अपने उस सोलह वर्षके जीवित और यौवनके तापसे उत्तप्त आरक्तिम रूपको एक बार तुम्हारी आँखोंके सामने रख दूं। बहुत दिनोंके लिए तुम्हारी आँखोंकी नींद छुड़ा दूं, तुम्हारी अस्थि-विद्याको अस्थिर करके देश-निकाला दे दूं!

मैंने कहा—"तुम्हारी देह होती, तो मैं तुम्हारी देह छूकर कहता कि उस विद्याका लेशमात्र भी अब मेरे मस्तिष्कमें नहीं है। तुम्हारा वह भुवन-मोहन पूर्ण यौवनका रूप निशीथ रातको इस अन्धकार-पटपर जाज्वल्यमान होकर प्रस्फुटित हो उठा है। बस, अब ज्यादा मत कहलाओ।"

वह कहने लगी:—

मेरी कोई सखी-सहेली न थी। भइयाने प्रतिज्ञा कर ली थी

कि वे ब्याह न करेंगे। घरमें सिर्फ मैं ही अकेली थी। बगीचेमें पेड़के नीचे बैठी-बैठी मैं सोचा करती, तमाम दुनिया मुझसे ही प्रेम करती है। आकाशके सारे तारे मुझे ही देखा करते हैं, हवा छलसे बार-बार गहरी साँसके रूपमें मेरी ही बगलसे निकल जाया करती है। जिस घासपर मैं पैर फैलाये बैठी हूं उसमें अगर चेतना होती तो वह भी मुझे पाकर फिरसे अचेतन हो जाती। मुझे मालूम होता, संसारके सारे युवक उस घासके रूपमें दल बाँधकर चुपचाप मेरे पैरोंके पास खड़े हैं। हृदयमें बिना कारण न-जाने कैसी एक वेदना-सी अनुभव करती रहती।

मेरे भइयाके मित्र शशिशेखर जब मेडिकल-कालेजकी आखिरी परीक्षा पास कर चुके, तो वे ही हमारे घरके डाक्टर हुए। उन्हें मैं पहले ओटमेंसे छिपकर बहुत बार देख चुकी थी। भइया बड़े अजीब आदमी थे, दुनियाको मानो वे अच्छी तरह देख न सकते थे। दुनिया उनके लिए मानो काफी खुली हुई न थी; इसलिए हटते-हटते वे बिलकुल उसके एक किनारेपर जा लगे थे।

उनके मित्रोंमें बस एक शशिशेखर ही थे। इसलिए बाहरके युवकोंमें मैं सिर्फ शशिशेखरको ही हमेशासे देखती आई थी। और जब मैं शामके वक्त फूलके पेड़के नीचे सम्राज्ञीकी तरह आसन जमाकर बैठती, तब ऐसा लगता जैसे संसारकी सम्पूर्ण पुरुष-जाति शशिशेखरकी मूर्ति धारण करके मेरे चरणोंके पास आकर आश्रय लेना चाहती है! सुन रहे हो? कहानी कैसी मालूम देती है?

मैंने एक गहरी साँस लेकर कहा—"मालूम होता है, मैं अगर शशिशेखर होकर पैदा होता तो अच्छा रहता।"

वह कहती गई :—

पहले पूरी सुन तो लो। एक दिनकी बात है, बदलीका दिन था, मुझे बुखार चढ़ा। डाक्टर मुझे देखने भीतर आये। यही पहली मुलाकात थी।

मैं खिड़कीकी तरफ मुँह किये लेटी थी, ताकि सूर्यास्तकी लाल आभा चेहरेपर पड़े और उसका फीकापन जाता रहे। डाक्टरने घरमें घुसते ही मेरे मुँहकी ओर एक बार देखा; और मैंने भी मन-ही-मन अपनेको डाक्टर मानकर कल्पनासे अपने मुँहकी ओर देखा। शामके उस गुलाबी उजालेमें नरम तकियेपर लापरवाहीसे पड़ा हुआ वह चेहरा मुझे कुछ मुरझाया हुआ-सा कोमल फूलके समान दीख पड़ा; बिखरे हुए घुँघराले बाल माथेपर उड़ रहे थे और लज्जासे झुकी हुई बड़ी-बड़ी आँखोंके पलक गालोंपर छाया डाल रहे थे।

डाक्टरने नम्रताके साथ मुलायम स्वरमें भैयासे कहा—'एक बार हाथ देखना होगा।'

मैंने रेशमी फर्दमें से अपना थका हुआ गोल-मटोल गोरा हाथ निकाल दिया। एक बार हाथकी ओर निहारकर देखा, उसमें अगर नीले रंगकी काँचकी चूड़ियाँ पहने होती तो वह और भी अच्छा लगता। रोगीका हाथ थामकर नाड़ी देखनेमें डाक्टरकी ऐसी चंचलता मैंने पहले कभी नहीं देखी। उन्होंने छूनेसे डरती और काँपती हुई उंगलियोंसे मेरी नाड़ी देखी। वे मेरे बुखारकी

गरभी समझ गये और मैंने भी उनकी अन्तरकी नाड़ी कैसी चल रही थी इसका कुछ-कुछ आभास पाया। क्यों विश्वास नहीं होता ?

मैंने कहा—"अविश्वासका कोई कारण तो नहीं देखता। आदमीकी नाड़ी हरवक्त एकसी नहीं चलती।"

वह कहने लगी :—

हूं ! क्रमशः और-भी दो-चार बार रोगी और आरोग्य होनेके बाद, एक दिन मैंने देखा कि मेरी उस संध्याकालकी मानस-सभामें संसारके करोड़ों पुरुषोंकी संख्या घटते-घटते अन्तमें वह एकपर आकर ठहर गई। मेरी दुनिया करीब-करीब सूनी-सी हो गई। संसारमें सिर्फ एक डाक्टर और एक रोगी बच रहा।

शाम होते ही मैं चुपकेसे उठकर बसन्ती रंगकी साड़ी पहनती, अच्छी तरह जूड़ा बाँधती, उसपर एक बेलाकी माला लपेटती और फिर एक दर्पण लेकर बगीचेमें जा बैठती।

क्यों ? अपनेको देख-देखकर क्या तृप्ति नहीं होती थी ? सचमुच न होती थी। क्योंकि मैं तो खुद अपनेको नहीं देखती, मैं तब अकेली बैठकर दो हो जाती। मैं तब डाक्टर बनकर अपनेको खूब निहार-निहारकर देखती, देखकर मोहित हो जाती, खूब प्रेम करती, लाड़-प्यार करती; और फिर भी हृदयके भीतर गहरी साँस उठ-उठकर शामकी आँधीकी तरह साँय-साँय करके हाहाकार कर उठती।

तबसे मैं अकेली नहीं रही; जब चलती तो नीचेको निगाह कर निरख-निरखके देखती कि पैरोंकी उंगलियाँ जमीनपर कैसे

पड़ती हैं; और सोचती कि इन पैरोंका रखना हमारे नवीन परीक्षोत्तीर्ण डाक्टरको कैसा लगता होगा? खिड़कीके बाहर दोपहरी धाँय-धाँय करती रहती, एक तरहका गरम सन्नाटा छा जाता, कहीं भी शोर-गुल नहीं, बीच-बीचमें एकआध चील बहुत दूर आकाशमें चीं-चीं करती हुई उड़ जाती; और हमारे बगीचेकी चहारदीवारीके बाहर खिलौनेवाला गानेके स्वरमें 'चहिए खिलौना चहिए, चूड़ी चहिए' बोला जाता। मैं तब अपने हाथसे बिछौना करके उसपर एक धुली हुई सफेद बरीक चादर बिछाकर सो जाती; और अपनी एक उघड़ी हुई बाँहको कोमल बिछौनेपर अनादरसे रखकर सोचती, इस हाथको इस ढंगसे रखते हुए मानो किसीने देख लिया, मानो किसीने दोनों हाथोंसे उसे उठा लिया, मानो किसीने उसकी गुलाबी हथेलीपर एक चुम्बन रख दिया; और मानो धीरे-धीरे वह लौटा जा रहा है।

सुनते हो, मान लो, यहींपर कहानी अगर खतम हो जाय, तो कैसा रहे?

मैंने कहा—"अच्छा ही रहे। जरा अधूरी तो रह जायगी, पर मन-ही-मन पूरी करनेमें बाकीकी रात मजेमें कट जायगी।"

हूं! लेकिन इससे कहानी बहुत गम्भीर हो जायगी। इसका मजाक फिर कहाँ रहेगा? इसके भीतरका 'कंकाल' अपने सारे दाँत किटकिटाता हुआ कहाँ दिखाई देगा?

हाँ, फिर उसके बाद, सुनो। जरा प्रैक्टिस बढ़ते ही डाक्टरने हमारे मकानके नीचे एक दवाखाना खोल दिया। तब फिर मैं उनसे हँसी-हँसीमें कभी दवाकी बात, कभी जहरकी बात, कभी

आदमी आसानीसे कैसे मर सकता है, यही सब ऊटपटांग बातें पूछती रहती। डाक्टरी-विषयोंमें डाक्टरका मुँह खुल जाता। सुनते-सुनते मौत मानो परिचित घरके आदमीकी तरह हो गई। फिर तो मुझे सिर्फ दो ही चीजें दुनियामें दीखने लगीं, प्यार और मौत !

मेरी कहानी अब करीब-करीब खतम हो चली, अब ज्यादा देर नहीं है।

मैंने मुलायम स्वरमें कहा—"रात भी करीब-करीब खतम हो आई।"

हाँ तो, कुछ दिनसे देखा कि डाक्टर साहब बड़े अनमने-से रहने लगे हैं ; और मेरे सामने तो बहुत ही झेंपते हैं। एक दिन देखा कि वे कुछ ज्यादा ठाठ-बाटसे सज-धजकर भइयाके पास आये और उनसे बग्घी माँगने लगे; रातको कहीं जायँगे।

मुझसे रहा न गया। भइयाके पास जाकर बातों-ही-बातोंमें मैंने पूछा—'भइया, डाक्टर आज बग्घी लेकर कहाँ जा रहे हैं ?'

संक्षेपमें भइयाने कहा—'मरने।'

मैंने कहा—'बताओ न भइया ?'

उन्होंने पहलेकी अपेक्षा कुछ-और खुलासा करके कहा—'ब्याह करने।'

मैंने कहा—'सचमुच ?' और फिर खूब हँसने लगी।

धीरे-धीरे मालूम हुआ कि इस ब्याहमें डाक्टरको बारह हजार रुपये मिलेंगे।

लेकिन मुझसे यह बात छिपाकर मुझे अपमानित करनेके क्या

मानी ? मैंने क्या उनके पैरों पड़कर कहा था कि ऐसा काम करनेसे मैं छाती फाड़कर मर जाऊँगी ? पुरुषोंका विश्वास नहीं। दुनियामें मैंने सिर्फ एक ही पुरुष देखा है ; और एक ही क्षणमें उसके बारेमें पूरी जानकारी हासिल कर ली है।

डाकृर रोगियोंको देखकर जब घर लौट आये, तो मैंने खिल-खिलाकर खूब हँसते-हँसते कहा—'क्यों डाकृर साहब, मैंने सुना है कि आज आपका व्याह होनेवाला है ?'

मेरी हँसी देखकर डाकृर सिर्फ झेंपे ही नहीं, बल्कि उनका चेहरा फक पड़ गया।

मैंने पूछा—'बाजे-आजे कुछ नहीं बुलाये ?'

सुनकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली ; और बोले—'व्याह क्या इतने आनन्दकी चीज है ?'

सुनकर मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। ऐसी बात पहले तो कभी नहीं सुनी थी। मैंने कहा—'सो नहीं होगा, बाजे होने चाहिए, रोशनी होनी चाहिए, पूरा ठाट-बाट होना चाहिए।'

उसके बाद भइयाको मैंने ऐसा परेशान कर डाला कि भइया उसी वक्त धूमधामसे बारात निकालनेकी तैयारीमें लग गये।

मैं बार-बार एक ही बात छेड़ने लगी कि बहूके घर आनेपर क्या होगा, मैं क्या करूँगी ? डाकृरसे मैं पूछ बैठी, 'अच्छा डाकृर साहब, तब भी क्या आप इसी तरह रोगियोंकी नाड़ी मसकते फिरेंगे ?' हि-हि-हि-हि ! यद्यपि मनुष्यका, खासकर पुरुषका, मन दिखाई नहीं देता, फिर भी मैं सौगन्द खाकर कह सकती हूँ कि मेरी बात डाकृरकी छातीमें काँटेकी तरह चुभकर रह गई।

बहुत रात बीते लग्न था। शामके वक्त डाक्टर छतपर बैठे भइयाके साथ दो-एक ग्लास शराब पी रहे थे। दोनों जने इस काममें कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाशमें चाँद उदय होने लगा।

मैं हँसती हुई ऊपर पहुंची ; बोली—'डाक्टर साहब, भूल गये क्या? चलनेका वक्त तो हो गया?'

एक बात मैं कहना भूल गई। इस बीचमें मैं छिपकर दवाखानेमें जाकर थोड़ा-सा सफेद चूरा ले आई थी। छतपर पहुंचते ही दोनोंकी निगाह बचाकर मैंने उसे डाक्टरके गिलासमें मिला दिया। किस चूरेके खानेसे आदमी मर जाता है, यह डाक्टरसे ही सीख लिया था।

डाक्टरने एक साँसमें तमाम गिलास खाली करके कुछ भीजे हुए गद्गद कंठसे, मेरे मुँहकी तरफ मर्मान्तिक दृष्टि डालकर कहा—'अच्छा, तो अब चलता हूं!'

शहनाई बजने लगी, नीचे उतरकर मैंने एक बनारसी साड़ी पहनी ; और जितने भी गहने मेरे सन्दूकमें बन्द रखे थे, सबके सब निकालकर पहन लिये ; माँगमें खूब अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया ; और फिर अपने उसी मौलसिरीके पेड़के नीचे बिछौना बिछाकर लेट रही।

बड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चाँदनी छिटक रही थी। सोती हुई दुनियाकी थकावट दूर करती हुई दक्षिणी हवा चल रही थी। मौलसिरी जूही और बेलाकी सुगन्धसे सारा बगीचा महक रहा था।

शहनाईकी तान क्रमशः जब दूर होती चली गई, चाँदनी जब

अन्धकारका रूप धारण करने लगी, मेरा वह मौलसिरीका पेड़, बगीचा, ऊपरका आसमान, नीचेका मेरा वह आजन्मकालका घर-द्वार सब-कुछको लेकर दुनिया जब मेरे चारों तरफसे मायाकी तरह मिलाने लगी, तब मैं आँखें मींचकर हँसने लगी।

इच्छा थी, जब लोग मुझे आकर देखें, तो मेरी वह हँसी रंगीन नशेकी तरह मेरे ओठोंपर ज्यों-की-त्यों लगी रहे। इच्छा थी, अपनी उस हँसीको यहाँसे मैं अपने साथ ही लेती जाऊँ; और वहाँ जब मैं अपने अभिसारकी अनन्तरात्रिकी सुहाग-कुटीरमें धीरे-धीरे प्रवेश करूँ, तब तक वह ज्यों-की-त्यों बनी रहे।

पर कहाँ गई मेरी वह सुहाग-कुटीर? कहाँ गया मेरा वह अभिसारका रंगीन मनोहर वेश? अपने भीतरसे एक खटखटकी आवाज सुनकर मैं जाग गई। देखा तो, मुझे लेकर तीन लड़के अस्थि-विद्या सीख रहे हैं! छातीके भीतर जहाँ सुख-दुख धुक-धुक करता रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन जहाँ यौवनकी कलियाँ खिला करती थीं, वहाँ बेंत दिखा-दिखाकर, किस हड्डीका क्या नाम है, यह सीखा जा रहा है! और मैंने जो अपने सम्पूर्ण हृदय-मनको निचोड़कर मेरे उन ओठोंपर अन्तिम हँसी खिलाई थी, उसका कोई चिह्न तुम्हें दिखाई दिया था क्या?

'कहानी कैसी लगी?'

मैंने कहा—"बड़े मजेकी।"

इतनेमें कौआ बोल उठा। मैंने पूछा—"अभी हो क्या?"

कोई जवाब नहीं मिला।

आँख खुलनेपर देखा कि मेरे मुँहपर सूरजकी किरणें पड़ रही हैं।

स्वर्णमृग

आदिनाथ और वैजनाथ चक्रवर्ती दोनोंकी शिरकतमें जमींदारी है। इन दोनोंमें बैजनाथकी हालत कुछ खराब है। बैजनाथके पिता महेशचन्द्रमें सम्पत्तिकी रक्षा करने या उसे बढ़ानेकी बुद्धि जरा भी न थी; वे अपने बड़े भाई शिवनाथपर ही पूरा भरोसा रखते थे। शिवनाथने छोटे भाई महेशचन्द्रको स्नेहके खूब दम-झाँसे दिये और उसके बदले उनकी तमाम जायदाद हड़प ली। सिर्फ थोड़ेसे प्रॉमिसरी नोट उनके पास बच रहे। जीवन-समुद्रमें बैजनाथको अब सिर्फ अपने उन्हीं थोड़ेसे सरकारी कागजोंकी नावका सहारा है।

शिवनाथने बड़ी खोजके साथ एक बड़े आदमीकी इकलौती लड़कीके साथ अपने पुत्र आदिनाथका व्याह कर दिया; और इस तरह वे सम्पत्तिवृद्धिका एक रास्ता छोड़ गये। और महेशचन्द्रने सात-सात लड़कियोंके बोझसे दबे हुए एक गरीब ब्राह्मणपर दया करके, दहेजमें एक पैसा भी न लेकर, उसकी बड़ी लड़कीके साथ अपने पुत्रका व्याह कर दिया। समधीकी सातों लड़कियोंको वे इसलिए अपने घर न ला सके कि उनके सिर्फ एक ही लड़का था; और उस ब्राह्मणने भी कोई विशेष आग्रह नहीं किया; मगर फिर भी सुनते हैं कि बाकी लड़कियोंके व्याहके लिए उन्होंने समधीको अपने बूतेसे ज्यादा रुपये-पैसेसे मदद की थी।

पिताकी मृत्युके बाद बैजनाथ अपने प्रॉमिसरी नोटोंको लेकर बिलकुल निश्चिन्त और सन्तोषके साथ जिन्दगी बिताने लगे। काम-धन्धेकी बात उनके मनमें आती ही न थी। काम उनका बस इतना ही था कि पेड़की डाली काटकर बैठे-बैठे उसकी छड़ी बनाया करते। दुनिया-भरके बच्चे और नौजवान उनके पास आते और छड़ीके लिए उम्मीदवार रहते; और वे उन्हें छड़ी बना-बनाकर देते। इसके सिवा उदारताकी उत्तेजनामें मछली पकड़नेकी छड़ी और पतङ्ग उड़ानेकी चरखी वगैरह बनानेमें ही उनका काफी समय जाता। ऐसा कोई काम हाथमें आ जाय कि जिसमें बड़ी सावधानीसे बहुत दिनों तक छीलने-घिसनेकी जरूरत हो और सांसारिक उपयोगिताको देखते हुए उसमें उतना वक्त बरबाद करना फजूल मालूम दे, तो उनके उत्साहकी हद न रहती।

अकसर देखा जाता कि मुहल्लेमें जब दलबन्दी और षड्यन्त्र या साजिशके पीछे बड़े-बड़े पवित्र चंडीमंडप और चौबारे धुआँधार हो उठते, तब बैजनाथ एक कलम-तराश चाकू और एक डाली हाथमें लिये सबेरेसे दोपहर तक और खाने-पीनेके बाद शाम तक अपने चबूतरेपर अकेले अपनी धुनमें मस्त बैठे रहते।

षष्ठीदेवीकी कृपासे बैजनाथके दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई। पर गृहिणी मोक्षदासुन्दरीका असन्तोष दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। उन्हें अफसोस है कि आदिनाथके घर जैसा समारोह है, बैजनाथके घर वैसा क्यों नहीं! उस घरकी विन्ध्यवासिनीके जैसे और जितने गहने हैं, बनारसी और ढाकेकी

जितनी साड़ियाँ हैं, उनके यहाँ बातचीतका जैसा ढंग और रहन-सहनका जैसा ठाठ है वैसा मोक्षदाके घर नहीं, इससे बढ़कर बेइन्साफकी बात और क्या हो सकती है ? और मजा यह कि एक ही खानदान है। कपटसे भाईकी जायदाद हड़पकर ही तो इतनी तरक्की की है उनलोगोंने ! ज्यों-ज्यों सुनती जाती, त्यों-त्यों मोक्षदाके हृदयमें अपने ससुर और ससुरके इकलौते बेटेपर अश्रद्धा और अवज्ञा बढ़ती ही जाती। अपने घरमें उसे कुछ भी नहीं सुहाता। सभी बातोंमें उसे अड़चन और मानहानि दिखाई देती। सोनेकी खटिया है, सो भी ऐसी कि मुर्दा ले जानेकी खाटसे बदतर। जिसकी सात पीढ़ीमें अपना कहनेको कोई नहीं, ऐसा एक अनाथ चिमगादड़का बच्चा भी इस घरकी टूटी-फूटी पुरानी दीवारमें नहीं चिपटा रह सकता, और घरकी सजावट देखकर तो महात्मा परमहंसकी आँखोंमें भी पानी आ जायगा। इन सब अत्युक्तियोंका प्रतिवाद करना मरदों जैसी कायर जातिके लिए तो सम्भव ही नहीं, इसलिए बैजनाथ बाहरके चबूतरेपर बैठकर दूनी लगनके साथ छड़ी छीलनेमें लग गये।

लेकिन मौनव्रत विपत्तिकी एकमात्र अमोघ औषधि नहीं है। किसी-किसी दिन पतिके शिल्प-कार्यमें विघ्न डालकर मोक्षदा उन्हें अन्तःपुरमें बुलवा ही लेतीं ; और अत्यन्त गम्भीरतासे दूसरी ओर ताकती हुई कहतीं—"ग्वालेसे कह दो, दूध बन्द कर दे !"

बैजनाथ सन्नाटेमें आ जाते, और नम्रतासे पूछते—"दूध बन्द करनेसे कैसे काम चलेगा ? लड़के पीयेंगे क्या ?"

गृहिणीजी उत्तर देतीं—"माँड़ ।"

किसी-किसी दिन इसके विपरीत भाव भी दिखाई देता; मोक्षदा पतिको बुलाकर कहतीं—"मैं कुछ नहीं जानती। जो करना हो, तुम्हीं करो।"

बैजनाथ उदास होकर पूछते—"क्या करना है बताओ भी ?"

"कमसे कम इस महीनेका तो सामान ले आओ।"—कहकर गृहिणी ऐसी एक फेहरिश्त बनाकर देतीं कि जिससे राजसूय-यज्ञ भी समारोहके साथ सम्पन्न हो जाता।

बैजनाथ हिम्मत बाँधकर अगर पूछते भी कि 'इतनेका क्या होगा ?' तो उत्तर सुनते, 'तो लड़कोंको भूखों मरने दो, और मैं भी मर जाऊँ, तब तुम अकेले रह जाना और खूब सस्तेमें काम चलाना।'

इस तरह धीरे-धीरे यह बात बैजनाथकी समझमें आ गई कि अब छड़ी छीलनेसे काम नहीं चलेगा। पैसा पैदा करनेका कोई रास्ता ढूँढ़ निकालना ही पड़ेगा। नौकरी या रोजगार करना बैजनाथके लिए दुराशा है, लिहाजा उन्होंने सोचा कि कुबेरके भण्डारमें घुसनेका कोई सुगम रास्ता ढूँढ़ निकालना ही इस आफतसे बचनेका एकमात्र उपाय है।

एक दिन रातको बिछौनेपर पड़े-पड़े वे अत्यन्त दीनतासे प्रार्थना करने लगे—"हे माता जगदम्बे, स्वप्नमें यदि किसी दुःसाध्य रोगीकी पेटेण्ट दवा बता दो, तो अखबारोंमें विज्ञापन लिखनेका भार मैं ले लूँ।"

उस रातको स्वप्नमें देखा कि उनकी स्त्री उनपर नाराज होकर चटसे 'विधवा-विवाह' करनेका प्रण कर बैठीं। 'अर्थाभाव होते हुए

काफी गहने कहाँ मिलेंगे ?'—यह कहकर वैजनाथ उनकी प्रतिज्ञाका विरोध कर रहे हैं; और 'विधवाको गहनेकी जरूरत नहीं' कहकर पत्नी उसका खण्डन कर रही हैं। इसका मुँहतोड़ जवाब कुछ है जरूर, पर उस समय उनके दिमागमें नहीं आया। इतनेमें नींद उचट गई, देखा तो सवेरा हो गया है; और तब झटसे उनके दिमागमें आया कि क्यों उनकी स्त्रीका विधवा-विवाह नहीं हो सकता; और इसके लिए वे कुछ दुःखित भी हुए।

दूसरे दिन सवेरे नहा-निबटकर बैजनाथ अकेले बैठे पतंगमें डोरा डाल रहे थे। इतनेमें एक संन्यासीने आकर दरवाजेपर जयध्वनि की। संन्यासीको देखते ही बिजलीकी तरह बैजनाथको भावी ऐश्वर्यकी उज्ज्वल मूर्ति दिखाई दी। संन्यासीका बड़ा-भारी आदर-सत्कार हुआ और अच्छे-अच्छे भोजनोंसे उसे तृप्त किया गया। बहुत साध्य-साधनाके बाद इतना मालूम कर सके कि संन्यासी सोना बना सकता है; और उस विद्याको दान करनेमें उसे कोई आपत्ति भी नहीं है।

गृहिणी भी मारे खुशीके नाच उठीं। यकृतके विकारसे जैसे सब पीला-ही-पीला दिखाई देता है, वैसे ही उन्हें तमाम दुनियामें सोना-ही-सोना दीखने लगा। कल्पना-शिल्पी द्वारा सोनेका पलंग घरका असबाब और दीवारों तकको सोनेसे मढ़कर मन-ही-मन उन्होंने विन्ध्यवासिनीको निमन्त्रण दे दिया।

संन्यासी प्रतिदिन दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहनभोग उड़ाने लगा; और बैजनाथके सरकारी कागजोंको दुहकर उसने मनमाना रौप्य-रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखीके भूखे लड़कोंका झुण्ड आता और बैजनाथके दरवाजेपर धमाधम घूँसा जमाकर लौट जाता। घरमें लड़के-बाले वक्तपर खाना नहीं पाते, कोई गिरकर माथेपर गूमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर डालता; मा-बापका उधर कुछ ध्यान ही नहीं। चुपचाप अग्निकुण्डके सामने बैठे कड़ाहेकी ओर टकटकी लगाये रहते, न आँखोंके पलक गिरते और न मुँहसे बात निकलती। ऐसा लगने लगा जैसे तृषित एकाग्र नेत्रोंपर लगातार आगकी लौका प्रतिबिम्ब पड़ते रहनेसे आँखोंकी मणियोंमें मानो स्पर्शमणिके गुण आ गये हों।

दो-दो प्रॉमेसरी नोटोंकी उस अग्निकुण्डमें आहूति हो चुकनेके बाद एक दिन संन्यासीसे आश्वासन मिला—"कल सोनेमें रंग आयेगा।"

उस दिन, रातको दोनोंमेंसे किसीको भी नींद नहीं आई। स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी बनानेके काममें लग गये। इस विषयमें कभी-कभी दोनोंमें मतभेद और बहस भी होने लगती; परन्तु आनन्दके आवेगमें उसकी मीमांसा होनेमें देर न लगती। परस्पर एक दूसरेका ख्याल रखकर अपने-अपने मतमेंसे कुछ-कुछ त्याग करनेमें किसीने कंजूसी नहीं की। सचमुच, उस रातको दाम्पत्य-एकीकरण इतना घना हो गया था।

दूसरे दिन, संन्यासीका पता ही नहीं! चारों तरफसे सोनेका रंग जाता रहा, सूर्यकी किरणें तक अन्धकारमय दीखने लगीं। इसके बाद फिर घरकी खटिया, असबाब और दीवारें चौगुनी दरिद्रता और जीर्णता प्रकट करने लगीं।

अबसे घरके काम-काजके बारेमें बैजनाथ कोई बात कहते, तो गृहिणी बड़े तीव्र-मधुर-स्वरसे कहतीं—"बस, रहने दो, अक्लमन्दी काफी दिखा चुके हो, अब जरा कुछ दिन चुप बने रहो।"

बैजनाथ बेचारे एकदम मध्यम पड़ जाते।

मोक्षदाने अब ऐसा श्रेष्ठताका भाव धारण कर लिया है कि मानो इस स्वर्ण-मरीचिकामें उन्हें एक घड़ीके लिए भी शान्ति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ स्त्रीको खुश करनेके लिए बहुतसे उपाय सोचने लगे। एक दिन एक चौखूंटे कागजके बकसमें गुप्त उपहार लेकर स्त्रीके पास पहुंचे; और खूब हँसकर बड़ी चतुराईके साथ सिर हिलाते हुए बोले—"क्या लाया हूं, बताओ तो?"

स्त्रीने कुतूहलको छिपाकर उदासीन भावसे कहा—"कैसे बताऊँ! मैं कोई जादू तो जानती नहीं!"

बैजनाथने अनावश्यक समय नष्ट करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गाँठ खोली, उसके बाद फूंक मारकर कागजकी धूल उड़ाई, फिर बड़ी सावधानीसे एक-एक तह खोलकर ऊपरका कागज हटाकर आर्ट-स्टूडिओकी बनी दशमहाविद्याकी पँच-रंगी तसवीर निकाली और उजालेकी तरफ घुमाकर गृहिणीके सामने रख दी।

गृहिणीको उसी समय विन्ध्यवासिनीके खास कमरेमें लगे हुए विलायती तैलचित्रकी याद उठ आई; वह बहुत ही अवज्ञाके साथ बोलीं—"अहा, बलिहारी है! इसे तुम अपनी बैठकमें ही लगा लेना; और बैठे-बैठे इसीकी ओर देखा करना। मुझे इसकी जरूरत नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गये; और समझ गये कि विधाताने उन्हें और-और शक्तियोंके साथ स्त्रीको खुश रखनेकी दुर्लभ शक्तिसे भी वञ्चित रखा है।

इधर देश-भरमें जितने ज्योतिषी थे, मोक्षदाने सबको हाथ दिखाया; और जनमपत्री भी दिखाई। सभीने यही कहा कि वे सधवा अवस्थामें मरेंगी; परन्तु उस परमानन्दमय परिणामके लिए वे बहुत व्यग्र न थीं; और इसलिए इससे भी उनका कुतूहल न मिटा।

अबकी सुना कि उनका सन्तान-भाग्य अच्छा है, लड़के लड़कियोंसे जल्द ही घर भर जायगा। सुनकर कोई खास खुशी नहीं जाहिर की।

अन्तमें, एक ज्योतिषीने कहा—"एक सालके अन्दर अगर बैजनाथको दैव-धन न मिल जाय, तो हम अपनी पोथी-पत्रा सब जला डालेंगे।"

ज्योतिषीकी इस दृढ़ प्रतिज्ञाको सुनकर मोक्षदाके मनमें अब रत्ती-भर भी अविश्वास न रह गया।

ज्योतिषी तो काफी भेंट-पूजा लेकर विदा हो गये; पर बैजनाथकी जिन्दगी भार-रूप हो गई। धन-उपार्जनके कुछ साधारण प्रचलित मार्ग हैं भी; जैसे खेती, नौकरी, व्यापार, चोरी और धोखेबाजी वगैरह-वगैरह; पर दैव-धन उपार्जनका वैसा कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है। इसीलिए मोक्षदा बैजनाथको ज्यों-ज्यों उत्साह देतीं और फटकार बतातीं, त्यों-त्यों उन्हें किसी तरफ कोई रास्ता नहीं सुझाई देता। कहाँ खोदना शुरू करें,

किस तालाबमें खोज करानेके लिए पनडुब्बोंको तैनात करें, मकानकी किस दीवारको तुड़वावें, कुछ निर्णय नहीं कर पाये।

मोक्षदाने बहुत ही नाराज होकर पतिसे कहा—"मरदोंके माथेमें मगजके बदले गोबर भरा रहता है, यह मैं पहले नहीं जानती थी।" फिर बोलीं—"जरा कहीं हिलो तो सही। ऊपरको मुँह बाये बैठे रहनेसे क्या आसमानसे रुपये बरसेंगे?"

बात तो ठीक है; और बैजनाथ चाहते भी यही हैं; पर हिलें तो किस तरफ, कहाँ? कोई बताता भी तो नहीं, इसलिए चबूतरेपर बैठकर वे फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मासमें दुर्गा-पूजा नजदीक आ गई। चतुर्थीसे नाव आ-आकर घाटपर लगने लगीं। प्रवासी लोग अपने देशको लौटने लगे। टोकनियोंमें कुम्हड़ा, घुइयाँ, सूखे नारियल, टीनके बक्सोंमें लड़कोंके लिए जूते, छाते, कपड़े और प्रेयसीके लिए एसेन्स, साबुन, 'सुगन्धित नारियल तैल' और नई-नई कहानियों की किताबें आ रही हैं।

शरत्की सूर्य-किरणें, उत्सवके हास्यकी तरह, मेघयुक्त आकाशमें व्याप्त हो रही हैं, अध-पके धानके खेत थरथर काँप रहे हैं, पेड़ोंकी वर्षासे धुली हुई सतेज हरी-हरी पत्तियाँ नये शीतकी हवासे सिसकारी भर रही हैं; और चायना-टसरका कोट पहने, कँधेपर ऐंठी हुई चादर लटकाये, सिरपर छतरी ताने परदेशसे लौटते हुए पथिकगण खेतके रास्तेसे घरकी तरफ जा रहे हैं।

बैजनाथ बैठे-बैठे यही देखा करते; और उनके हृदयसे लम्बी साँसें निकलती रहतीं। अपने आनन्दशून्य घरके साथ बंगालके

हजारों घरोंके मिलनोत्सवकी तुलना करते और मन-ही-मन कहते, 'विधाताने मुझे ही क्यों ऐसा अकर्मण्य पैदा किया ?'

लड़के तड़के ही से उठकर प्रतिमा-निर्माण देखनेके लिए आदिनाथके घर आँगनमें जाकर बैठ गये। खानेका समय होनेपर दासी उन्हें जबरदस्ती वहाँसे पकड़ लाई। बैजनाथ उस समय चबूतरेपर बैठे हुए आजके इस विश्वव्यापी उत्सवमें अपने जीवनकी निष्फलताका स्मरण कर-करके दुःखित हो रहे थे। दासीके हाथसे दोनों लड़कोंको छुड़ाकर प्रेमसे उन्हें अपनी गोदके पास खींचकर बड़े लड़केसे पूछा—"क्यों रे, अबकी पूजामें तू क्या लेगा, बोल ?"

अविनाशने उसी समय जवाब दिया—"एक नाव देना, बापूजी।"

छोटे लड़केने भी सोचा कि बड़े भइयासे किसी विषयमें कम रहना ठीक नहीं ; बोला—"मुझे भी एक नाव देना, बापूजी।"

बापके लायक लड़के हैं। एक निकम्मा शिल्प-कार्य मिल गया कि बाप धन्य हो गये। बापने कहा—"अच्छी बात है।"

इधर यथासमय पूजाकी छुट्टियोंमें काशीसे मोक्षदाके एक चाचा घर लौटे। आप वकालत करते हैं। मोक्षदाने कुछ दिनों तक उनके घर खूब आना-जाना जारी रखा।

आखिर एक दिन पतिसे आकर कहने लगीं—"सुनते हो, तुम्हें काशीजी जाना पड़ेगा।"

बैजनाथको अचानक ऐसा लगा कि शायद उनका अब मृत्यु-समय आ पहुंचा ; जरूर किसी ज्योतिषीने जनमपत्री देखकर

कहा होगा, इसीसे सहधर्मिणी उनकी सद्गतिके लिए उद्योग कर रही हैं।

पीछे मालूम हुआ कि काशीमें एक मकान है, और वहाँ गुप्त-धन मिलेगा; उस मकानको खरीदकर उसमेंसे धन ले आना होगा।

बैजनाथने कहा—"यह तो बड़ी आफत है। मैं काशी नहीं जा सकूंगा।"

बैजनाथ आज तक घर छोड़कर कभी बाहर नहीं गये। प्राचीन शास्त्रकार लिखते हैं, गृहस्थको किस तरह घरसे निकाला जाता है, इस विषयमें स्त्रियोंको 'अशिक्षित-पटुत्व' होता है। मोक्षदा अपने मुँहकी बातोंसे मानो घरमें लालमिर्चका धुआँ भर देती थीं; लेकिन उससे अभागा बैजनाथ सिर्फ आँसू ही बहाकर रह जाता, काशी जानेका नाम तक नहीं लेता।

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गये। बैजनाथने बैठे-बैठे कुछ लकड़ियोंको काट-छाँटकर और जोड़-जाड़कर दो खेलनेकी नावें बनाईं। उनमें मस्तूल बिठाये और कपड़ा काटकर पाल लगा दिये; लाल कपड़ेकी ध्वजा लगाई और पतवार वगैरह जहाँकी तहाँ बिठा दीं। एक गुड्डेको मल्लाह बनाया और यात्री भी बिठा दिये। गरज यह कि उसमें उन्होंने काफी निपुणताका परिचय दिया। उन नावोंको देखकर अपने मनको वशमें रख सकें, ऐसे संयतचित्त बालक बिरले ही मिलेंगे। इसलिए बैजनाथने सप्तमी के पहले छठकी रातको जब दोनों नावें दोनों लड़कोंके हाथमें दीं, तो वे मारे खुशीके नाचने लगे। एक तो खाली नाव ही काफी थी, उसपर लगे हुए थे पाल, मस्तूल, पतवार और मल्लाह

वगैरह सब कुछ; यही उनके लिए बड़े-भारी ताज्जुबकी बात थी।

लड़कोंकी खुशीकी धूमने माका ध्यान आकर्षित किया; और उन्होंने आकर अपनी आँखोंसे गरीब बापका दिया हुआ पूजाका उपहार पुत्रोंके हाथमें देखा। देखकर, मारे गुस्सेके उन्हें रोना आ गया; तकदीरपर हाथ दे मारा और लड़कोंके हाथसे खिलौने छीनकर जंगलेसे बाहर फेंक दिये। 'सोनेका हार तो दरकिनार रहा, साटनका कोट और जरीदार टोपी भी मिट गई! कैसा मनहूस आदमी है, दो खिलौने देकर खास अपने ही लड़कों को धोखा देने आया है! उसमें भी कंजूससे दो पैसे खर्च नहीं किये गये, अपने हाथसे बनाई हैं!'

छोटा लड़का जोरसे रो उठा। "मूरख कहींका"—कहते हुए मोक्षदाने उसके गालपर कसकर एक तमाचा जड़ दिया।

बड़ा लड़का बापके मुँहकी ओर देखकर अपना दुःख भूल गया, और ऊपरी खुशी दिखाता हुआ बोला—"बापूजी, मैं कल खूब सबेरे जाकर उठा लाऊँगा।"

बैजनाथ उसके दूसरे ही दिन काशी जानेको राजी हो गये; पर रुपये कहाँ हैं? उनकी स्त्रीने जेवर बेचकर रुपये इकट्ठे किये। बैजनाथकी दादीके जमानेकी चीजें थीं; ऐसा पक्का सोना और इतनी वजनी चीजें आजकल तो देखनेको भी न मिलेंगी।

बैजनाथको ऐसा लगा कि जैसे वे मरने जा रहे हैं। लड़कोंको गोदमें लेकर पुचकारा, खूब प्यार किया, फिर आँखोंमें आँसू भरकर घरसे निकल पड़े। तब मोक्षदा भी रोने लगीं।

काशीका मकान-मालिक बैजनाथके ककिया-ससुरका मुवक्किल था। शायद इसीलिए मकान खूब ऊँचे दामोंमें बिका। बैजनाथ उस मकानमें अकेले ही रहने लगे। मकान बिलकुल गंगाके किनारेपर है; गंगाकी धारा उसकी नींवको धोती हुई बहती है।

रातको बैजनाथके रोंगटे खड़े हो उठे। सूने मकानमें सिरहानेके पास एक दीआ जलाकर चद्दर ओढ़कर सो रहे; पर नींद नहीं आई। आधी रातको, जब तमाम शोर-गुल थम गया, तब कहींसे एक 'झनझन' आवाज सुनकर बैजनाथ चौंक पड़े। आवाज बहुत धीमी, पर सुनाई साफ देती है; मानो पातालमें बलि राजाके कोषाध्यक्ष अपने भण्डारमें बैठे हुए रुपये गिन रहे हों।

बैजनाथके मनमें भय कुतूहल और साथ ही अजेय आशाका भी संचार हुआ; काँपते हुए हाथसे दीआ उठाकर सब कोठरियोंमें घूम आये। इस कोठरीमें घुसते तो मालूम होता कि आवाज उस कोठरीसे आ रही है, और उस कोठरीमें जाते तो मालूम होता कि इस कोठरीसे आ रही है। बैजनाथ सारी रात इसी तरह इस कोठरीसे उस कोठरी घूमते रहे। दिनको रातका वह पातालभेदी शब्द और-और शब्दोंके साथ मिल गया; फिर वह पहचाननेमें नहीं आया।

रातके जब दो-तीन पहर बीत चुके, और दुनिया सो चुकी, तो फिर वह शब्द जग उठा। बैजनाथका चित्त बहुत ही व्याकुल हो उठा। उनसे शब्दका लक्ष्य ठीक करके किधर जाना चाहिए कुछ स्थिर करते न बना। मानो मरुभूमिमें पानीका कल्लोल सुनाई दे रहा है, पर किधरसे आ रहा है, कुछ निर्णय करते नहीं

बनता। डर यह है कि कहीं गलत रास्ता पकड़ लिया और गुप्त झरना बिलकुल अधिकारके बाहर चला गया तो? प्यासा पथिक जैसे चुपचाप खड़ा-खड़ा पानीके झरनेकी आवाजकी तरफ बड़े गौरसे कान लगाये रहता है, इधर प्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, ठीक वही दशा बैजनाथकी हुई।

बहुत दिन अनिश्चित अवस्थामें ही कट गये, सिर्फ अनिद्रा और वृथा आश्वाससे उनके सन्तोषपूर्ण मुँहपर व्यग्रताका तीव्र भाव ही रेखान्वित हो उठा। उनके भीतर धँसे हुए चकित नेत्रोंमें दोपहरकी मरु-बालुकाकी तरह एक ज्वाला दिखाई देने लगी।

अन्तमें एक दिन दोपहरको सब दरवाजे बन्द करके उन्होंने घर-भरमें साबर ठकठकाना शुरू कर दिया। बगलकी एक छोटी कोठरीकी जमीन पोली-सी मालूम दी।

आधी रातके करीब बैजनाथ अकेले बैठकर जमीन खोदने लगे। जब रात खतम होने आई और पौ फटने लगी, तब कहीं गड्ढा पूरा खुद पाया।

उन्होंने देखा कि नीचे एक घर-सा बना हुआ है, पर रातके अँधेरेमें उसमें बिना विचारे पैर डालनेकी उनकी हिम्मत न पड़ी। गड्ढेके ऊपर बिछौना बिछाकर पड़ रहे; पर आवाज इतनी साफ-साफ सुनाई देने लगी कि डरके मारे उनका वहाँ ठहरना मुश्किल हो गया। वहाँसे वे उठ आये, लेकिन घरको यों ही सूना छोड़कर दूर जानेकी भी उनकी प्रवृत्ति न हुई। लोभ और भय दोनों मिलकर उन्हें दोनों ओरसे हाथ पकड़कर खींचने लगे। रात बीत गई।

आज दिनमें भी आवाज सुनाई दे रही है। नौकर तकको उन्होंने घरके भीतर नहीं आने दिया, और खाना-पीना भी बाहर ही किया। खा-पीकर घरमें घुसे और भीतरसे ताला बन्द कर दिया।

दुर्गा नामका जप करते हुए उन्होंने गड्ढेके मुँहपरसे बिस्तर हटाकर अलग कर दिया। पानीकी छपछप और धातुकी ठनठन आवाज बिलकुल साफ-साफ सुनाई देने लगी।

डरते-डरते गड्ढेके पास अहिस्तासे मुँह ले जाकर देखा, बहुत नीचे एक कोठरी-सी है, उसमें पानीका स्रोत चल रहा है; अँधेरेमें और विशेष कुछ नहीं दिखाई दिया।

फिर एक बड़ी लकड़ी डालकर आजमाया, देखा कि पानी घुटनोंसे ज्यादा नहीं है। एक दिआसलाई और बत्ती लेकर उस कोठरीके अन्दर बड़ी आसानीसे कूद पड़े। क्षणभरमें ही कहीं सारी आशा बुझ न जाय, इसलिए बत्ती जलानेमें हाथ काँपने लगे। बहुतसी दिआसलाई नष्ट होनेके बाद बत्ती जली।

देखा कि लोहेकी मोटी जंजीरसे एक ताँबेका बड़ा-भारी घड़ा बँधा हुआ है; एक-एक बार स्रोतका पानी जोरसे आता है और जंजीर घड़ेपर पड़ती और आवाज करती है।

बैजनाथ पानीपर छपछप शब्द करते हुए झटपट घड़ेके पास पास पहुंचे। देखा तो घड़ा खाली है।

फिर भी अपनी आँखोंपर विश्वास न ला सके, दोनों हाथोंसे घड़ा उठाकर उसे खूब झकझोर डाला। भीतर कुछ भी न निकला। औंधा करके हिलाया। कुछ भी न गिरा। देखा तो

उसका गला उखड़ा हुआ है, मानो किसी समय इस घड़ेका मुँह बिलकुल बन्द था, पीछे किसीने तोड़ा है।

तब बैजनाथ पागलकी तरह पानीके अन्दर दोनों हाथोंसे टटोल-टटोलकर देखने लगे। कीचड़में कोई चीज पड़ी-सी मालूम दी; उठाकर देखा तो मुर्देकी खोपड़ी निकली। उसे भी कानोंके पास ले जाकर झकझोरा; भीतर कुछ न निकला। खोपड़ी उठाकर फेंक दी। बहुत देर तक ढूँढ़ते रहे; पर नर-कङ्कालकी हड्डियोंके सिवा और-कुछ हाथ न आया।

देखा, गंगाकी तरफ दीवारमें एक जगह सूराख-सा हो रहा है, उसमेंसे पानी आ रहा है। सम्भव है, उनसे पहलेके जिस आदमीकी जनमपत्रीमें दैव-धन प्राप्तिकी बात लिखी थी, वह शायद इसी छिद्रसे घुसा होगा।

आखिर जब बिलकुल हताश हो गये तो 'अरी मेरी मा!' कहकर एक गहरी साँस ली; उसके जवाबमें मानो अतीतकालके और भी बहुतसे हताश व्यक्तियोंकी साँसें भीषण गम्भीरताके साथ प्रतिध्वनिके रूपमें पातालसे गूँज उठीं।

तमाम देहमें पानी और कीचड़ लपेटे हुए बैजनाथ ऊपर आये। जन-पूर्ण कोलाहलमय पृथ्वी उन्हें आदिसे अन्त तक झूठी और उसी जंजीरसे बँधे हुए घड़ेकी तरह सूनी मालूम देने लगी।

फिर सब चीज-वस्त बाँधनी पड़ेगी, टिकट खरीदना पड़ेगा, गाड़ीपर चढ़ना होगा, घर जाना होगा, स्त्रीके सामने जवाबदेही करनी होगी, अपने अकर्मण्य जीवन-भारको फिर पहलेकी तरह

ढोना पड़ेगा। तबीयत हुई कि नदीके कमजोर बालूके तटकी तरह चटसे टूटकर पानीमें गिर जायँ।

पर ऐसा न कर सके। फिर वही चीज-वस्त बाँधनी पड़ी, टिकट खरीदना पड़ा और गाड़ीपर भी चढ़ना पड़ा।

एक दिन शामके वक्त घरके दरवाजेपर जा पहुंचे। आश्विन मासमें, शरद्-ऋतुके प्रातःकालमें, दरवाजेके पास बैठकर बैजनाथने अनेक प्रवासियोंको घर लौटते देखा है और गहरी उसास लेकर मन-ही-मन वे विदेशसे देश लौटनेके इस सुखके लिए लालायित भी हुए हैं, लेकिन तब वे आजकी इस संध्याकी स्वप्नमें कल्पना भी कर सकते थे।

घरमें जाकर आँगनके तख्तपर निर्बोधकी तरह बैठे रहे; भीतर नहीं गये। सबसे पहले महरीने उन्हें देखा; और देखते ही शोर मचा दिया। लड़के दौड़े आये। गृहिणीने बुलावा भेजा।

बैजनाथका मानो एक नशा-सा उतर गया। फिर मानो वे उसी पुरानी घर-गृहस्थीमें सोते-सोते जाग उठे। सूखे मुँहपर मलिन हँसी लिये एक लड़केको गोदमें लेकर और एकका हाथ पकड़कर भीतर पहुंचे। दिआ जल चुका था। यद्यपि रात नहीं हुई थी, तो भी जाड़ेकी संध्यामें रातकी तरह सन्नाटा छा गया था।

बैजनाथ कुछ देर तक तो चुप रहे; फिर मृदुस्वरसे स्त्रीसे पूछने लगे—"कहो, कैसे रहीं?"

स्त्रीने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा—"क्या हुआ?"

बैजनाथने कुछ जवाब न देकर तकदीरमें हाथ दे मारा। मोक्षदाका मुँह अत्यन्त कठोर हो गया।

लड़के बेचारे किसी भारी अकल्याणकी छाया देखकर आहिस्तेसे किनारा कर गये। महरीसे जाकर बोले—"उस दिनवाली नाईकी कहानी सुनाओ न।" और बिस्तरपर पड़ रहे।

रात होने लगी ; पर दोनोंके मुँहसे एक भी बात न निकली। घरके अन्दर न-जाने कैसा एक सन्नाटा-सा छा गया ; और मोक्षदाके ओठ क्रमशः वज्रकी तरह कठोर होने लगे।

बहुत देर पीछे मोक्षदा बिना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कमरेमें चली गईं ; और भीतरसे हुड़का लगा लिया।

बैजनाथ चुपचाप बाहर खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार' आवाज देकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुखकी नींद सोती रही। अपने आत्मीय-स्वजनोंसे लेकर अनन्त आकाशके नक्षत्र तक किसीने भी इस लांछित निद्रा-हीन पुरुष बैजनाथसे एक बात भी न पूछी।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्नसे जागकर, बैजनाथके बड़े लड़केने बिछौनेसे उठकर बरामदेमें आकर पुकारा—"बापूजी !"

तब उसके बापूजी वहाँ थे नहीं। बालकने और भी जरा जोरसे बन्द किवाड़के बाहरसे पुकारा—"बापूजी !" पर कोई जवाब न मिला। फिर वह डरता-डरता बिछौनेपर जाकर सो गया।

पहलेकी रीतिके अनुसार महरीने हुक्का भरकर बैजनाथकी तलाश की ; लेकिन वे कहीं भी न दिखाई दिये। दिन चढ़नेपर पड़ोसी लोग घर लौटे-हुए पड़ोसीकी खबर-सुध लेने आये ; पर बैजनाथके साथ किसीकी भी मुलाकात न हुई।

बदलीका दिन

रोज ही दिन-भर काम रहता है, और चारों तरफ भीड़-भड़भड़। रोज ही ऐसा मालूम होता है, मानो उस दिनके काममें, उस दिनकी बातचीतमें, उस दिनकी सारी बातें उसी दिन बिलकुल खतम कर दी जाती हैं।

भीतर-ही-भीतर कौनसी बात रह गई, इतना भी समझनेका मौका नहीं मिलता।

आज सवेरे बादलोंके समूहसे आकाशकी छाती भर आई है। आज भी दिन-भरके लिए काम पड़ा है सामने, और चारों तरफ लोगोंकी भीड़ है। परन्तु, आज मालूम होता है, भीतर जो-कुछ है, बाहरसे उसे बिलकुल खतम नहीं किया जा सकता।

मनुष्यने समुद्र पार किये, पहाड़ लाँघ डाले, और तो क्या पाताल-पुरीमें सेंध मारकर वह माणिक-मोती चुरा लाया; पर एकके हृदयकी बात दूसरेको चुकता दे डालना, यह उससे किसी तरह न हो सका।

आज सवेरे, बदलीके दिनमें, मेरी वह पिंजड़ेमें बन्द मनकी बात हृदयके अन्दर पंख फड़फड़ाकर मरी जा रही है। भीतरका आदमी कह रहा है—"मेरा चिरकालका वह और-एक आदमी कहाँ है, जो मेरे हृदयके श्रावण-मेघोंको कंगाल बनाकर उसकी सारी वर्षा छीन लेता?"

आज बदलीके दिनमें, सबेरेसे ही सुन रहा हूं, भीतरकी वह मनकी बात बार-बार बन्द दरवाजेकी साँकल हिला रही है।

सोच रहा हूं, 'क्या करूँ? कौन है, जिसकी बुलाहटसे काम-काजकी मेंड़ लाँघकर, मेरी वाणी अभी तुरत स्वरका दीपक हाथमें लेकर, विश्वके अभिसारके लिए निकल पड़े? कौन है, जिसकी आँखोंके एक इशारेसे मेरी बिखरी हुई सारी व्यथाएँ एक क्षणमें एक आनन्दमें गुँथ जायँ, एक उजालेमें जल उठें? मुझसे ठीक स्वरमें जो माँग सके, मैं उसीको सिर्फ उसीको दे सकता हूं। मेरा वह सत्यानाशी भिखारी है किस चौराहेपर?'

मेरे भीतरकी उस व्यथाने आज गेरुआ वसन पहन लिये हैं। रास्तेमें निकलना चाहती है वह, सब काम-काजोंके बाहरके मार्गमें, जो मार्ग एकमात्र सरल तारके एकतारेके समान न-जाने किस मनके आदमीके चलनेके साथ बज रहा है।

हिन्दू-मुसलमान

संसारमें दो धर्म-सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनका अन्य समस्त धर्म-मतोंके खिलाफ विरोध बहुत ही उग्र है; वे हैं क्रिश्चियन और मुसलमान-धर्म। वे अपने धर्मका पालन करके ही सन्तुष्ट नहीं, बल्कि अन्य धर्मोंमें रुकावट डालनेको तैयार रहते हैं। इसीलिए उनसे मिलनेका उनका धर्म अंगीकार करनेके सिवा और-कोई रास्ता ही नहीं। ईसाई-धर्मवालोंके बारेमें एक सहूलियतकी बात यह है कि वे आधुनिक युगके वाहन हैं; उनका मन मध्ययुगकी चहारदीवारीके अन्दर बन्द नहीं है। धर्ममत एकान्तरूपसे उनके सारे जीवनको घेरे हुए नहीं है। इसलिए अन्य धर्मवालोंको वे अपने धर्मके घेरेसे पूरी बाधा नहीं पहुंचाते। 'यूरोपीय बौद्ध' या 'यूरोपीय मुसलमान' इन शब्दोंमें स्वतः विरुद्धता नहीं है। लेकिन धर्मके नामपर जिस जाति (या नेशन) का नामकरण है, धर्ममतसे ही उनका मुख्य परिचय है। 'मुसलमान-बौद्ध' या 'मुसलमान ईसाई' ये दोनों शब्द स्वतः ही असम्भव हैं। दूसरी तरफ, हिन्दू-जाति भी एक हिसाबसे मुसलमानोंके ही माफिक है, यानी वह धर्मकी चहारदीवारीसे पूरी तरह घिरी हुई है। बाहरी फरक यह है कि अन्य धर्मोंके प्रति विरुद्धता उसके लिए सकर्मक नहीं है; अ-हिन्दू सभी धर्मोंके साथ उसका non-violant non-co-operation

यानी अहिंसापूर्ण असहयोग है। "हिन्दुओंका धर्म मुख्यत: जन्मगत और आचारमूलक होनेसे उसकी चहारदीवारी और-भी मजबूत और कड़ी है। मुसलमान-धर्म अंगीकार करके मुसलमानोंके साथ समानरूपसे मिला जा सकता है; हिन्दुओंके यहाँ वह रास्ता भी बहुत संकीर्ण है। आहार-व्यवहारमें मुसलमान अन्य सम्प्रदायोंको विधि-निषेधोंके द्वारा अस्वीकार या वापस नहीं करता, हिन्दू वहाँ भी सावधान है। इसीसे खिलाफतके मौकेपर मुसलमान अपनी मसजिदोंमें और अन्यत्र हिन्दुओंको जितना पास खींच सके, हिन्दू मुसलमानोंको उतना नजदीक नहीं खींच पाये। आचार है आदमीके साथ आदमीके मिलनेका सेतु यानी पुल; वहींपर हिन्दू कदम-कदमपर अपनी दीवार खड़ी करते रहे हैं।

मैं जब पहले-पहल अपनी जमींदारीके काममें लगा था तब मैंने देखा कि हमारी कचहरीमें मुसलमान किसानोंको जाजमका एक कोना उठाकर वहाँ बैठने दिया जाता है। आदमी आदमीके मिलनके लिए, अन्य आचार-अवलम्बियोंको अपवित्र समझनेके बराबर, ऐसी खतरनाक रुकावट और-कुछ नहीं हो सकती। भारतवर्षकी ऐसी ही तकदीर है कि यहाँ हिन्दू और मुसलमान जैसी दो जाति इकट्ठी हो गई हैं। धर्ममतमें हिन्दुओंकी बाधा प्रबल नहीं, आचारमें प्रबल है; और आचारमें मुसलमानोंकी बाधा प्रबल नहीं, धर्ममतमें प्रबल है; मतलब यह कि एक पक्षमें जिस तरफका दरवाजा खुला है, दूसरे पक्षमें उस तरफका दरवाजा बन्द है। आखिर ये कैसे मिलेंगे?

एक जमाना था जब कि भारतमें ग्रीक पारसीक शक नाना जातियोंका बेरोकटोक समागम और सम्मिलन हुआ था। लेकिन याद रहे, यह 'हिन्दू'-युगके पहलेकी बात है। हिन्दू-युग है एक प्रतिक्रियाका युग; इस युगमें ब्राह्मण्य-धर्मकी नींव बड़ी कोशिशोंके साथ पक्की-पुख्ता करके उठाई गई थी। दुर्लंघ्य आचारोंकी दीवारें खड़ी करके उसे दुष्प्रवेश कर दिया था। इस बातकी तब याद ही नहीं रही थी कि किसी प्राणवान चीजको बिलकुल कसके बाँधकर रखनेके मानी ही हैं उसे मार डालना। कुछ भी हो, मतलबकी बात यह है कि किसी खास जमानेमें बौद्ध-युगके बाद राजपूत आदि विदेशी जातियोंको अपने गुटमें मिलाकर, विशेष अध्यवसायके साथ, अपनेको परकीय सम्बन्ध और प्रभावसे पूरी तरह बचाये रखनेके लिए ही आधुनिक हिन्दू-धर्मको भारतवासियोंने बड़ी-भारी चहारदीवारीके रूपमें गढ़के तैयार कर लिया था; असलमें इसकी प्रकृति ही है निषेध और प्रत्याख्यानकी, मनाही और अलग करनेकी। सब तरहके मिलनेके खिलाफ ऐसी निपुणता और इतने कौशलके साथ रची हुई बाधाकी सृष्टि दुनियामें और कहीं भी नहीं हुई।

यह बाधा हिन्दू और मुसलमानमें ही हो सो बात नहीं। आप और हम जैसे आदमी भी, जो आचारमें अपनी पूरी आजादी रखना चाहते हैं, अलग हैं, बाधाग्रस्त हैं। समस्या तो यही है; पर समाधान कहाँ है इसका? है मनके परिवर्तनमें, और युगके परिवर्तनमें। यूरोप सत्यकी साधना और ज्ञानकी व्याप्तिके भीतरसे जिस तरह मध्ययुगमेंसे निकलकर आधुनिक युगमें आ

पहुंचा है, हिन्दू और मुसलमानोंको भी उसी तरह चहारदीवारीके बाहर निकलना पड़ेगा। धर्मको कब्रकी बनावटपर बनाकर उसमें सारी जातिको भूतकालमें पूरी तरह बन्द करके रखनेसे तरक्कीके रास्तेपर चलना हरगिज मुमकिन नहीं; उसमें किसीके लिए किसीके साथ मिलनेका रास्ता ही नहीं।

हमारी मानस-प्रकृतिमें जो अवरोध या चहारदीवारी है उसे बगैर मिटाये हम किसी भी हालतमें सच्चे अर्थोंमें स्वाधीन नहीं हो सकते। शिक्षाके जरिये, साधनाके द्वारा हमें उसकी मूल जड़को बदलना ही पड़ेगा, मनोंमें परिवर्तन लाना ही होगा। डैनोंसे पिंजड़ा बड़ा है इस धारणा और संस्कारको बिलकुल बदल डालना होगा। उसके बाद हमारा कल्याण हो सकेगा। हिन्दू-मुसलमानका मिलन युग-परिवर्तनके लिए बैठा इन्तजार कर रहा है। लेकिन यह बात सुनकर डरनेकी कोई वजह नहीं; कारण और-और देशोंमें आदमीने अपनी शिक्षा और साधनासे युगको बदल डाला है; वे 'कोए' के युगमेंसे 'पंख पसारने' के युगमें निकल आये हैं। हम भी मानसिक चहारदीवारीको तोड़कर, दिमागी घेरेको तितर-बितर करके बाहर निकल आयेंगे; और अगर न आये तो "नान्यःपन्था विद्यते अयनाय।" इसके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं मिलनका।*

एक पत्र : आषाढ़, १९७९]

* अब इस रास्तेपर 'चलनेका समय' आ गया है।